श्रीहरिः

वर्तमान-संसार

पं० रामानुग्रह शर्मा, व्यास

धर्मोपदेशक

संस्थापक—राम-वेद-विद्यालय

काशी

प्रकाशक—

राम—कार्यालय,

पो० लंका,

बनारस सिटी

द्वितीयबार	सम्वत्	मूल्य
१०००	१९८९ वि.	१)

प्रकाशक—
राम-कार्यालय,
पो० लंका, बनारस सिटी

मुद्रक—
भूपसिंह शर्मा,
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

प्राक्कथन

मुझ धर्म्माचार्य्य श्रद्धेय पण्डित रामानुग्रह शर्म्मा व्यास कृत, मौलिक पुस्तक 'वर्त्तमान ससार' की हस्तलिपि, गया के सुचतुर नागरिक तथा प्रसिद्ध श्री मन्नूलाल-पुस्तकालय के संस्थापक, श्रीमान् बाबू सूर्य्यप्रसाद जी महाजन (गया) की असीम अनुकम्पा से आज से दो-तीन मास पूर्व्व, अध्ययन करने का सुअवसर हुआ था। साहित्य-मर्मज्ञ सहृदय कवि बाबू मैथिली शरण जी गुप्त कृत 'भारत-भारती' का मध्य खण्ड जिस समय मैं पढ़ रहा था, हृदय में यह प्रबल लालसा उत्पन्न होती थी कि इस खण्ड का वर्णन वर्त्तमान समयानुसार वृहत् रूप मे किसी सुकवि द्वारा जनता के सामने रखा जाता तो बड़ा अच्छा होता। मैं इस 'वर्त्तमान संसार' की उस पुस्तकसे स्पर्द्धा कर इस पुस्तक की श्रेष्ठता सिद्ध नही करता, परन्तु इतना अवश्य है कि पण्डित जी के स्वतन्त्र-स्पष्ट और उत्तम विचारों की लहरती हुई सरस हिन्दी की ललित समुचित पंक्तियां, मेरे मानस क्षेत्र की उस न्यूनता की पूर्त्ति कर चिरकाल की आशा को पल्लवित करती हैं। पण्डित जी ने सर्व साधारण के समझने के लिए अपनी कविता की भाषा सरल और भाव भली भांति स्पष्ट रूपेण वर्णन करने की चेष्टा की है।

कविता जैसी है, वह तो सब पूज्य सुचतुर काव्य पारंगत कवियों के ज्योति विकीर्णकारी उज्वल चक्षुओ के समक्ष है ही, वे स्वयं इसकी मीमांसा सहानुभूति पूर्वक करेंगे, पर मेरी तुच्छ सम्मति में एक ऐसी पुस्तक-जिससे संसार की परिस्थितियाँ जन साधारण के आगे कविता-रूप में विदित कराया जाये-नितान्त आवश्यकता थी, जिस आवश्यकता की पूर्त्ति करने का उद्योग पण्डित जी ने किया है।

पुस्तक के प्रथम अध्याय मे सम्पूर्ण देवताओ की वन्दना भक्तिपूर्व्वक की गई है और दूसरे अध्याय मे वर्तमान दशा का दिग्दर्शन कराया गया है जो सचमुच बड़ा हृदय-विदारक है। वर्तमान समाज, सभा,तीर्थ, म्युनिसिपैल्टी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि का उल्लेख करुणापूर्ण दर्शाया गया है। तीसरे अध्याय मे नेतृत्व, वर्त्तमान गवर्नमेंट, देशदेशांतर का वर्णन और वर्तमान बाजार पर दृष्टि डाली गई है। देश देशांतर के वर्णन मे केवल प्रधान २ देशो का ही वर्णन है और वहा की जनसंख्या और विश्व-विद्यालयो का ब्यौरा बिल्कुल ठीक नहीं दिया जा सका है। केवल इसलिये उल्लेख किया गया है जिससे इस पवित्र आर्य्यभूमि की जनता उसे अपने देश से तुलना कर अपनी हीनता का ज्ञान प्राप्त कर सके। चतुर्थ अध्याय मे कुरीति-विभाग, सुधार की सम्मति, सामयिक प्रसंग और सब से महत्वपूर्ण अछूतोद्धार का प्रश्न हल करने का प्रयत्न किया गया है। अंतिम दो अध्याय में आशा और उपसंहार के साथ बालोपदेश, अखंड

ब्रह्मचर्य्य की महिमा, किसान क्लेश तथा गोरक्षा की आवश्यकता बताई गई है।

मेरे विचार से यह पुस्तक वर्त्तमान समय में बड़े काम की है। पुस्तक के भाव कहीं २ पर बड़े मार्मिक और ओजस्विनी भाषा मे आये हैं। यद्यपि काव्य के भाव, बड़ी २ उपमाये और अलंकारो से अलंकृत नहीं किये गये हैं, तो भी इतनी बात अवश्य है कि भाव बड़े आदरणीय और हृदयग्राही हैं। वर्त्तमान समय मे हिन्दुओ की जैसी अधोगति हो रही है कहने की आवश्यकता नही। मेरे विचार से ऐसी गिरी अवस्था के हिन्दू-समाज की जागृति पैदा करने मे यह पुस्तक एक मात्र सजीवन बूटी मे कार्य्य करेगी। उदाहरणार्थ निम्न लिखित पद है—

ओ हिन्दुओ ! वह, सब तुम्हारे भाग्य ने पाया नहीं।
अब तक नजर मे ठीक मारग आपको आया नहीं॥
हां, हां उठो ! उसको निकालो जाति से बाहर करो।
हां, हां लड़ो ! हरदम लड़ो ! लड़कर गिरो, गिरकर मरो॥

उपरोक्त पद के सब शब्द हैं तो बड़े सरल. पर कैसे प्रभावशाली और उत्साहजनक हैं ? यह वर्त्तमान साहित्यानुरागी सहृदय वाचकवृन्द को स्वयं पढ़ने से अवगत होगा।

पण्डितजी से बिहार और दूसरे २ प्रान्तों की जनता चिरकाल से परिचित है। आप २२ वर्षों से कथा द्वारा हिन्दुओं में जागृति, समाज-सुधार, यज्ञ, अछूतोद्धार ऐसे गहन कार्य्य को किस खूबी से करते हैं, अधिकांश जनता को यह बात मालूम है।

आप प्रतिमास किसी न किसी नगर मे कथासमाप्ति के साथ २ गोपूजन, ब्राह्मण तथा अछूत भोजन और यज्ञ कर वेद भगवान का जलूस निकाल कर जनता को उत्साहित करते हैं। मनुष्यों का ध्यान अपने विचार की ओर आकर्षित करने की अपूर्व्व शक्ति आप में विद्यमान है।

अव आपने अपने कार्य्य को अक्षयरूप से कार्य्यान्वित करने के उद्देश्य से इस 'वर्त्तमान संसार' रूपी वृक्ष को अनवरत परिश्रम कर अमृतसदृश शब्दों से सींच कर भावरूपी फूलफल से युक्त कर समाज के आगे पुस्तक रूप मे प्रस्तुत किया है जिससे चिरकाल तक जनता इसके फूलफल को खाकर लाभ उठा सके। इसी विचार के वशीभूत होकर पंडित जी ने 'वर्त्तमान संसार' नामक मौलिक काव्य की रचना की है।

क्या मैं आशा के साथ पण्डित जी से यह विनम्र प्रार्थना कर सकता हूं कि अपनी पुस्तक-माला की दूसरी पुस्तक भी हम लोगो के सामने शीघ्र रखने की कृपा करेंगे ? मुझे पूर्ण ही नहीं अटल विश्वास है कि मेरी प्रार्थना अरण्यरोदनवत् न होगी।

माडल हाई स्कूल होस्टल
गया
कार्त्तिक पूर्णिमा १९२३

हरिहरप्रसाद सिंह

द्वितीय संस्करण

प्रिय पाठको,

यह 'वर्तमान-संसार' नामक ग्रंथ पहले पहल सन् १६२३ई० में गया में प्रकाशित हुआ था और अब सन् १६३२ ई० मे आगरा नगर में छप कर तैयार हुआ है। अर्थात् ६ वर्ष का समय बीत गया।

प्रेमी पाठको की कृपा से इस ग्रन्थ की प्रतियाँ कई वर्ष पहले ही निकल गईं, पर कार्य-कारण ऐसे पड़े कि इसका द्वितीय बार प्रकाशन शीघ्र न होसका।

प्रथम बार शीघ्रता के कारण इस ग्रन्थ में छन्द, काव्य तथा प्रकाशन सम्बन्धी अनेक दोष रह गये थे, जो इस बार यथा-सम्भव सुधार दिये गये हैं और आशा है कि तृतीय संस्करण मे इस ग्रन्थ की पूर्णरूप से कायापलट कर दी जायगी।

इस दूसरे संस्करण में निम्न लिखित कई विशेषताये हैं—

१—पुस्तक मे दो चित्र दिये गये है।

२—सप्तम अध्याय विशेष जोड़ दिया गया है।

३—इस बार सम्पूर्ण पुस्तक की विषय-सूची देदी गई है।

४—आवरण, कागज, छपाई आदि पर पूरा ध्यान दिया गया है

५—इतने पर भी मूल्य पहले की अपेक्षा प्रचारार्थ कम कर दिया गया।

पाठकों से निवेदन है कि इस पुस्तक के भावो को ध्यान मे रख कर इसे अपनाने की कृपा करे।

अन्त मे हमारी ओर से उन सज्जनो को धन्यवाद है, जिन्होंने इस पुस्तक की प्रति देख लेने की कृपा की है।

विजयादशमी
सं० १६८६

विनीत
लेखक—
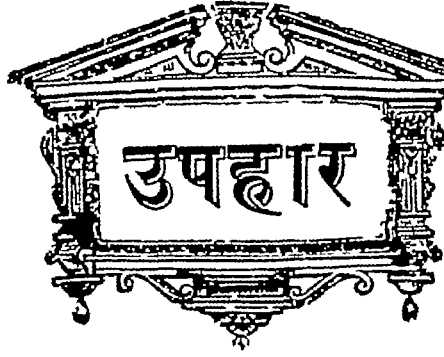
उपहार
दिखे मुकुर में भानु-शशि, चख में गगन अपार !
तिमि इहि पुस्तक में निहित, 'वर्तमान-ससार' ॥
श्रीयुत
ता० । ।१६३
उपहारक—

द्वितीय अध्याय

प्रथम परिच्छेद—

(अतीत की स्मृति)

द्वितीय परिच्छेद—

(वर्तमान की दशा)

तृतीय अध्याय

——:०:——

तृतीय परिच्छेद—

(देश-देशान्तर वर्णन)

चतुर्थ परिच्छेद—

(वर्तमान का बाजार)

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

——::०::——

परिशिष्ट-—

वर्तमान संसार

पं० रामानुग्रह शर्मा, व्यास धर्मोपदेशक।

प्रथम अध्याय

प्रथम परिच्छेद—प्रार्थना विभाग

द्वितीय परिच्छेद—भक्ति-विभाग

श्रीगणेशायनमः
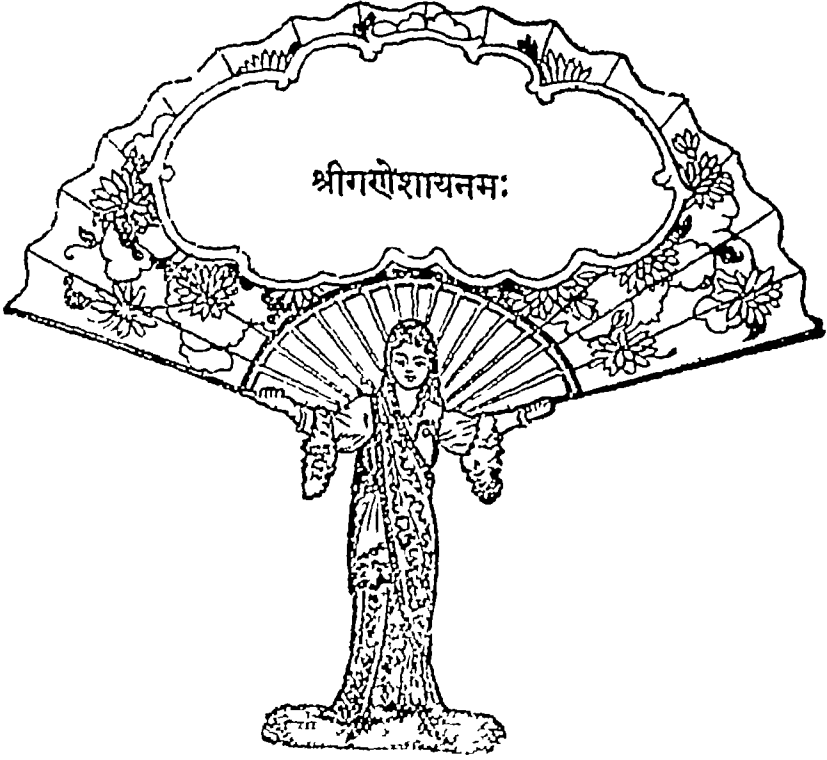
श्री हरिः

वर्तमान-संसार
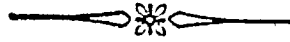
प्रथम अध्याय

प्रार्थना-विभाग
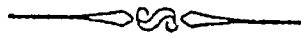
१—श्रीगणेश-वन्दना

(१)

मंगल-भवन, शंकर-सुवन ! धीरज-स्वरूप ! गणेशजी ।
गणराज ! गणपति ! अंकपति ! स्वरशब्दरूप गणेशजी ॥
श्रीवदन विश्वस्वरूप-से ! व्यापक अरूप ! गणेशजी ।
गणनाथ हैं ! नरनाथ हैं ! श्रुतिनीतिभूप ! गणेशजी ॥

(२)

है निकट दोनो चरण के, कर रूप सुन्दर नासिका।
नरचरण से हरिचरण तक की, ब्रह्मसूत्र प्रवासिका॥
निज दन्त से दिखला रहे हैं, रास्ता आकाश का।
शिक्षक स्वरूप! लखा रहे, निज धाम आत्म निवास का॥

(३)

गणनाथ ही के वदन भीतर, भूमि सारी राजती।
है काल चक्कर दे रहा, है शक्ति सज-धज साजती॥
गणनाथ ही के हृदय भीतर, महा काली गाजती।
"उग्रह" गजानननयन युग मे, मातृ-मूर्ति विराजती॥

(४)

हे पाठको! आओ! चले गणनाथ के दर्शन करें।
उस धीर-वीर स्वभाव से, कुछ धैर्य आकर्षन करे॥
उन नाव रूपी चरण का, चलिये, सरस पर्शन करे।
फिर आज के संसार का, सब भांति दिग्दर्शन करे॥

(५)

उत्तम स्वरूप गणेशजी! अबतो कृपा दर्शाइये।
संसार की इस नाव को, कृपया किनारे लाइये॥
निरुपम-सबल संगठन से, सच्ची सुमति सरसाइये।
अघओघ-शोक विनाश कर, दुष्कर्म सर्व मिटाइये॥

२--श्रीविधाता-वन्दना

(६)

हे सृष्टि के कर्ता विधाता, धन्य तेरा नाम है।
अत्यन्त! दुर्गम शक्ति वाला, अलख तेरा काम है॥
जो कुछ रचा श्रीमान ने, सो आप ही वतला सकें।
हम किस तरह उस ज्ञान को, मानस-भवन में ला सके॥

(७)

हमको चढ़ाया था कहां, बीते हुये इतिहास मे।
हमको बिठाया है कहा, इस वर्तमान प्रवास में॥
ले चलो हमको शीघ्र ही, अपने भविष्यत् देश में।
अवतो रहा जाता नहीं, इस क्लेश में, इस वेश में॥

३--श्रीविराट्-वन्दना

(८)

आकाश जैसी बुद्धि है, मन भूमि जैसा आपका।
हैं नयन सूरज-चन्द से, यह रूप कैसा आपका॥
हैं तत्व पांचो मुख वने, सारा जमाना आपका।
है तेज जीवन ज्योति का, सब में समाना आपका॥

(९)

श्रीमान् अब कुछ ज्ञान दो, हम को नहीं बीता कहो।
हृदयेश! अब कुछ शान्ति दो, कोई नई गीता कहो॥
हम किरण हैं, तुम सूर्य हो, हम शाख, तुम आधार हो।
हम सब कुमति में पड़ गये, पर आप सर्व सुधार हो॥

(१०)

पाठक ! कृपालु विराट सा, कोई सगा सच्चा नहीं।
ये ध्यान रखिये हर समय, बस और कुछ अच्छा नहीं ॥
जिसके महान प्रताप द्वारा, घूमती प्रति क्षण मही।
प्रभुवर ! "अनुग्रह" पर अनुग्रह, कीजिये बिनती यही ॥

४--श्रीशिव-वन्दना

(११)

जो स्वयं सगुण रूप से, शंकर बने कैलाश के।
जो स्वयं निर्गुण रूप से, शिव हैं बने आकाश के ॥
जो मूल हैं विश्वास के, आधार हैं जो भक्ति के।
सब पर अनुग्रह सो करें, दाता अलौकिक शक्ति के ॥

(१२)

शिव ! संत ! सद्गुरु ! जगद्गुरु ! अवधूत ! योगी रावरे।
सर्वस्व सबको दे दिया, विष घोर भोगी रावरे ॥
शिव की दया बिन हो सके, उन्नति नहीं यह है सही।
"कृपया अनुग्रह" पर अनुग्रह, कीजिये विनती यही ॥

५--श्रीसूर्य-वंदना

(१३)

दिन हो गया था बुद्धि का, आकाश एकदम खुल गया।
दर्शन दिवाकर ने दिया, सब दुःख मन का धुल गया ॥
तमरूप जो अज्ञान था, सो एक क्षण मे खो गया।
जागो ! उठो ! लोगो ! निहारो ! लो सवेरा हो गया ॥

(१४)

जिस सूर्यका गौरव निरख, ऋषि और मुनि ध्यानी हुये।
जिस सूर्यकी महिमा निरख, अंगरेज विज्ञानी हुये॥
जिस सूर्यके सुप्रताप द्वारा, कर्म-रत प्राणी हुये।
उस भानु की कर वन्दना, श्रीराम जी ज्ञानी हुये॥

(१५)

सब कर्म के कारण वही, हैं मार्ग के शिक्षक बड़े।
जो पूछना हो पूछिये, गुरु देव सन्मुख हैं खड़े॥
दिननाथ जैसे कृष्ण को, प्रति वार पाकर सामने।
क्यों मूढ़ हैं हम हो रहे, अन्धा बनाया काम ने॥

(१६)

करते नहीं जो भक्ति रवि की, पूर्ण अन्धे हैं वही।
आदित्य के साहित्य बिन, होती नहीं उन्नति सही॥
जप और पूजन आरती से, सदय उन को कीजिये।
मन वांच्छित निज लाभ उस, रघुवंश द्वारा लीजिये॥

(१७)

भगवान! दिनकर! किरणमय! अवलम्ब अपना दीजिये।
है तुच्छ, पर मम बुद्धि की, छोटी सरोजिनि लीजिये॥
ये प्राण मेरे, आप के ही, चरण-कमलों में लगें।
भगवान! दिनकर! ज्ञानमय! सबमें भले! सबके सगे॥

६—श्रीराम-वन्दना

(१८)

सरयू नदी एकाग्र सी, गम्भीरता के प्रान्त में।
है धैर्य की धरणी वहां, है शान्ति सब संभ्रान्त मे॥
उस नेम के साकेत मे, है प्रेम की खिड़की लगी।
जब दर्श पाया राम का, तब हृदय की द्विविधा भगी॥

(१९)

लेटा हुआ पर्यङ्क पर है, बाल रूप सुहावना।
आनन्द एक अखण्ड है, गाते नहीं कवि से बना॥
जिस चरण की शोभा नही, शत कोटि काम बना सके।
उन रामजी का मुख अलख, 'उग्रह' नही दिखला सकें॥

(२०)

सब नेम के, सब प्रेम के, हैं मूलधन, सब स्वार्थ के।
रक्षक वही, शिक्षक वही, संसार के परमार्थ के।
श्रीराम अपनी भृकुटि द्वारा, समय पुनि पलटाइये।
फिर राम राज्य प्रभात सम, संसार मे दिखलाइये॥

(२१)

सब लोग, रोगों में पड़े, तन में, हज़ारों रोग हैं।
मन भी नहीं सुस्थिर हुआ, उस में हज़ारो भोग हैं॥
है ज्ञान भी पाया नही, हम, जानते कब योग हैं।
बस, आप के हम दास हैं, यह मानते हम लोग हैं॥

७--श्रीशक्ति-वन्दना

(२२)

जिस शक्ति द्वारा घूमता, भूगोल सारे देश का।
जो ध्यान उसका करेगा, तो काम क्यों हो क्लेश का॥
है नेत्र मे सब कुछ बना, हृद्धाम राम समान है।
वह बदन है, वह सदन है, उस मे हमारा प्रान है॥

(२३)

जगदम्ब के अवलम्ब से, दीपक सभी के जल रहे।
जगदम्ब ही के नाम पर, फलफूल सारे, फल रहे॥
जिनकी सुता थीं राधिका, जिनकी सुता थीं जानकी।
रक्षा करे वे देश के, अत्यन्त निर्बल प्रानकी॥

(२४)

त्रुटियां हमारे हृदय की, हर लीजिये निज शक्ति से।
प्रमुदित हमें कर दीजिये, हे अम्ब ! अपनी भक्ति से॥
निर्बल हमारा मन हुआ, निर्बल हमारा तन हुआ।
दारिद्रता के कोप से, अत्यन्त दुष्कर धन हुआ॥

(२५)

हैं, आप इच्छाशक्ति हरिकी, जगत-माता नाम हैं।
संसार के उद्धार का, तेरे करों में काम है॥
हैं लड़ रहे नर द्वैत में, अभिमान में, अज्ञान में।
"उग्रह" न अब देरी करो, अद्वैत के विज्ञान मे॥

८—श्रीसरस्वती-वन्दना

(२६)

हे भारती! हैं आपही तो, शब्द रूपी! जानकी।
दो शक्ति ज्ञान महान की! दो भक्ति श्री भगवान् की॥
हैं चरण शीतल रावरे, श्री शारदा! गुणखान हो।
जिस पर नज़र हो आपकी, उसका सदा कल्यान हो॥

(२७)

मा भारती! सिखलाइये! जो जानते हों हम नहीं।
लाखों विषय हैं! और कितनों में, हमारी गम नहीं॥
विज्ञान में तुम कम नहीं, अज्ञान में हम कम नहीं।
कर दो प्रकाशित विषय सब, रह जाय कोई तम नहीं॥

(२८)

जग जायं सारे विषय अब, इस लेखनी की नोंक से।
उठकर सजग हों लोग सब, तेरी कृपा की झोंक से॥
"उग्रह" प्रकट हो एकता, हो प्रेम सब के साथ में।
शोभित रहे यह पुस्तिका, नर-नारि सब के हाथ में॥

९—श्रीमहावीर-वन्दना

(२९)

दुर्मति सरीखी लंक में, अगणित निशाचर बढ़ रहे।
दुर्मुख-भयानक काल से, पापी कुचाली अड़ रहे॥
हैं क्रूर, कायर, कामरत, अत्यन्त क्रोधी पातकी।
परनारि, परधन घातकी, माता-पिता-गुरु-घातकी॥

(३०)

ले वज्र हे बजरङ्ग वाले, गर्जना हो आपकी ।
पापी सकल गिर जांयेगे, जब तर्जना हो आपकी ॥
अब फिर जले लंका पुरी, है शान्ति की सीता हरी।
रोती हुई मइया पड़ी, रोती हुई गइया मरी ॥

(३१)

जग जाइये, नवयुवक दल में, ब्रह्मचर्य प्रसार हो ।
जग जाइये, सब घरों में, अस ऐक्य धर्म प्रचार हो ॥
उठ बैठिये, हे दीन बन्धो, काम को संहार दो ।
छल छिद्र में पत्थर भरो, अज्ञान खल को मार दो ॥

(३२)

गुरु देव ! आप सुजान के, हो दूत श्री भगवान के ।
श्री मान् ! कजरी बन निवासी, मित्र सर्व जहान के ॥
हो अमर ! अविनासी ! अजर, इस मर्म को न छिपाइये ।
बजरंवाले ! हाथ में ले वज्र, अब जग जाइये ॥

(३३)

श्री मान्यवर हनुमान जी, व्यापक महोदय आप हैं ।
देखें 'अनुग्रह' देश में, छाये, हजारों पाप हैं ॥
हम सेवकों के आपही, गुरुदेव, माई-बाप हैं ।
स्वामी ! समय तो आगया, फिर आप क्यों चुपचाप हैं ॥

१०—श्रीगंगा-वन्दना

(३४)

हरिद्वार से, हरि के चरण से, आगमन है आपका ।
करुणामयी ! तुमने उठाया, भार सारे पाप का ॥
दर्शन मिला संसार मे, सौभाग्य भारतवर्ष का ।
या हो 'अनुग्रह' रूप तुम, जगदीश्वर के हर्ष का ॥

(३५)

मातेश्वरी ! देना बहा, सब छल-कपट-पाखण्ड को ।
निर्मल बनादो एकसा, इस दुष्टमति ब्रह्माण्ड को ॥
फिर से हरी कर दीजिये, इस दीन भारत की मही ।
अब तो 'अनुग्रह' पर अनुग्रह, कीजिये विनती यही ॥

११—श्रीगायत्री-वन्दना

(३६)

हैं तीन धारा विश्व मे, सत और रज-तम नाम से ।
वह तीन धाराएँ चलीं, गायत्रि के ही धाम से ॥
है त्रिगुण की जो शक्ति, आद्या, मंत्र गायत्री वही ।
करुणामयी ! करुणा करो ! "उग्रह" करें विनती यही ॥

(३७)

गायत्रि के ही मंत्र से, परदे सभो उठ जायंगे ।
अवगुण सकल घट जांयगे,सद्गुण अमित वढ़ पायंगे ॥
गायत्रि की जो सत्य-सत्ता, युक्त महिमा जानता ।
तो जीव, निज जगदम्ब के, इस रूप को पहिचानता ॥

१२—श्रीगीता-वन्दना

(३८)

वह दिवस कितना धन्य था, सौभाग्य से भरपूर था ।
जब प्रकट दिल्ली में हुआ, गीता सरस वह नूर था ॥
संसार की सब जातियां, सब लोग, जिसको पढ़ रहे ।
गीता लिये निज हाथ मे, विद्वान् आगे बढ़ रहे ॥

(३९)

आशा हमारी और जीवन-वल्लरी गीता ! तुम्हीं ।
पावन, पुनीत, विनीतस्वर की, ज्ञानमय सीता ! तुम्हीं ॥
हम निर्बलो के हृदय मे, सच्चा विलक्षण बल तुम्हीं ।
जब करोगी संसार का, उद्धार तब केवल तुम्ही ॥

(४०)

गीते ! सिखाया तो बहुत, अब कुछ नया दिखलाइये ।
कोई कला संसार मे, अपनी नई प्रकटाइये ॥
"उग्रह" हमारे हृदय भीतर, ज्योतिरूप जगाइये ।
संसार को, उद्धार का, मारग सबल, बतलाइये ॥

१३—श्रीगौ-वन्दना

(४१)

पकड़े हुये हम पूंछ जिसकी, पार वैतरनी करें ।
उस गाय की पदवन्दना में, भ्रांति द्वारा क्यों डरे ?
जैसे नदी गंगा नहीं, त्यों जानवर "गइया" नहीं ।
"मइया" हमारे प्रेम से, दो रूप रख रहती यहीं ॥

(४२)

है आज 'गइया' रूप मइया, पर ग़जब का दुख पड़ा ।
संसार मे, कलिकाल का, अत्यन्त-भीषण बल खड़ा ॥
जो कष्ट कुछ देती नहीं, आनन्द जो देती रही ।
किस दोष से, है लाल उसके रक्त से सारी मही ॥

(४३)

जो-जो किये, अपराध हम, उसको न मन में लाइये ।
तुमको नहीं दुख देयं, तो, गोविन्द कैसे पाइये ॥
जब-जब पुकारा आपने, गोविन्द को, गोपाल को ।
"उग्रह" हटाया आपने, तब विश्व से दुष्काल को ॥

१४—श्रीगोविंद-वन्दना

(४४)

गोविन्द हे ! गोपाल हे कुछ ध्यान गीता का करो ।
है भार धरणी पर वड़ा, आकर इसे जल्दी हरो ॥
गज ने पुकारा था तुम्हें, भागे गरुड़ को छोड़ के ।
अब सो गये हैं आप क्या, सब मोह-माया तोड़ के ॥

(४५)

गोविन्द के ही नाम पर, हम लोग वैठे धार में ।
उस पार से आकर दिखाओ, मूर्ति निज इस पार में ॥
अर्जी सकल संसार की, पहुंची नहीं सरकार मे ।
या आ गई है कमी अब, "उग्रह" तुम्हारे प्यार मे ॥

१५—प्रार्थना

(४६)

हे ईश्वर ! हे ईश्वरी ! हे देवियो ! हे देवता ।
कीजे अनुग्रह सर्व, जिससे, शान्ति का पावे पता ॥
अवगुण हटा दीजे सकल, सद्गुण समस्त प्रचार दो ।
संसार सारा माँगता, उद्धार दो ! उद्धार दो ॥
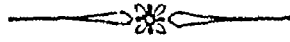
दूसरा परिच्छेद

भक्ति

(४७)

उपकार करना विश्व का, जो चाहते संसार मे ।
जो सजग रहना चाहते, निज चरित के व्यवहार मे ॥
जो जातियों की सब कुरीतें, दूर करना चाहते ।
जो मातृभूमि-स्नेह में, सब भाँति मरना चाहते ॥

(४८)

जो लोक-शिक्षा चाहते, जो चाहते कल्यान हैं ।
जो चाहते विज्ञान अथवा, चाहते जो ज्ञान हैं ॥
सुनलें, समझले और मन में मानले, वे ध्यान मे ।
उत्थान, उन्नति आदि सुख के, सूत्र हैं भगवान मे ॥

(४६)

भगवन केवल एक हैं, आकार उनका गुप्त है।
निर्गुण सगुण-दोनो रचे, वह ईश बिलकुल लुप्त है॥
दरबार उनका है बड़ा, यह सृष्टि-क्रम गम्भीर है।
जिसमे भरी तक़दीर है, जिसमे भरी तदबीर है॥

(५०)

है नाम उनका कुछ नही, सब नाम हैं साकार के।
साकार उनकी शक्ति है, वह हैं बिना आकार के॥
आकार भी है, किन्तु, उपमा सर्व, माया रूप है।
भगवान की ये सृष्टि सारी, अजब और अनूप है॥

(५१)

भगवान के बन भक्त जाओ, क्यों भटकते राह मे।
दिन-रात क्यो तुम घूमते, मायाविनी की चाह मे॥
सत और रज, तम भेद से, यह खेल उनका जानिये।
क्या काम भाषा से रहा, वह भाव, मन मे, मानिये॥

(५२)

जिसके हृदय मे, प्रेम ईश्वर का, कभी आता नहीं।
वह गिर गया है नरक भीतर, शान्ति-सुख पाता नही॥
जो प्रेम में उन्मत्त होकर, राम-यश गाता नही।
वह नर निशाचार रूप-है, 'उग्रह' हमें भाता नही॥

(५३)

धन-धाम कंचन-कामिनी का, काम दिन भर कीजिये।
उस प्राण प्रिय के प्रेम में, निज रात थोड़ी दीजिये॥

सो जाइये, निज शीस उनके, चरण मे रख, मोद से।
जग जाइये प्रातः समय, श्रीराम जी की गोद से॥

(५४)

हैं पांच निष्ठाएँ सफल, विश्वात्म के ही प्रेम की।
रमणीक शुभगति है वही, जीवात्म के ही क्षेम की॥
निज २ स्वभाव विचार कर, चुन लीजिये निष्ठा वही।
उस भावना मे रहो लय, मानो हमारी ये कही॥

(५५)

है प्रथम निष्ठा 'मातृ' रूपी, आप शिशु हो जाइये।
माता बिना कुछ भी नहीं, अनुभव यही उर लाइये॥
मा को पुकारो तड़प से, चातुर्यता बिसराइये।
"श्रीराम कृष्ण" समान, सच्चे परमहंस कहाइये॥

(५६)

जिस भवन मे 'माता' बनी, उस भवन की रक्षा रहै।
माता बिना घर, शून्य है, लोकोक्ति ये दुनियां कहै॥
निज बदन रूपी भवन-भीतर, इष्ट मूर्ति, विठाइये।
इस भांति अन्तःकरण अपने को, पवित्र बनाइये॥

(५७)

है दूसरी निष्ठा विशद, 'गुरुदेव' रूपी भाव मे।
अज्ञान से मन छूटता, लगता सुरति के चाव मे॥
गुरु रूप देखै राम को, वह ज्ञान सच्चा पा गया।
भूला हुआ था सुबह से, संध्या समय घर आ गया॥

(५८)

गुरु की दया पीयूष है, गुरु-दण्ड भी वरदान है।
सत्संग, दर्शन, चरण पर्शन, से सदा कल्यान है॥
अविचार होते दूर सारे, सुमति उर में राजती।
तव, बुद्ध अपनी, विमल मंगल आरती है साजती॥

(५९)

भगवान् का गुरुरूप, जगमें, व्याप्त कैसा होरहा !
तप-तेज द्वारा, मैल सब, प्रत्येक क्षण मे धोरहा॥
गुरु भक्ति से किसने कहो, निज लक्ष्य-धन पाया नहीं।
अज्ञान मिट सकता नहीं, जो 'संत-पद' भायो नहीं॥

(६०)

गुरुदेव-पद द्वारा खुलैं, शिवनेत्र, साधक-भक्त के।
गुरु कृपा से 'तुलसी' खड़े, है-सामने शिव-तत्त्व के॥
गुरुवचन पर विश्वास रख, ध्रुव पागये ध्रुव धाम-सा।
गुरु की कृपा से होगया प्रहलाद का यश राम-सा॥

(६१)

गुरुदेव ! मिलते संसकारों से, वड़े सौभाग्य से।
सद्गुरु मिलैं 'जानो अनुग्रह' से, वड़े ही त्याग से॥
सद्गुरु मिले, तो मिल गये, भगवान् ही साकार में।
है आत्मविद्या गुप्त जीवित, शिष्य-गुरु व्यवहार में॥

(६२)

है 'पितृ'-निष्ठा तीसरी, जगदीश वाले ध्यान की।
संयम सुदृढ़ आता वही, जो राह है विज्ञान की॥

श्री परशुराम समान योधा, होगये जिस भक्ति से।
इन्कार किसका होसके, उस पितृ वाली शक्ति से॥

(६३)

किसने नहीं पाया, पिता का प्रेम, इस संसार में।
सामर्थ्यता कितनी, भरी है, पिताजी के, प्यार मे॥
पावन परम है, चरण जब, जग मे पिताजी के बड़े।
आश्चर्य क्या जो रामजी ही पिता तन में हो खड़े॥

(६४)

है भावना चौथी कठिन, सुप्रसिद्ध 'स्वामी' रूप की।
करनी पड़ेगी चाकरी, विश्वातमा से भूप की॥
जो चाहता वेतन नहीं, पर, हुक्म प्रभु का मानता।
वह सच्चा सेवक धर्म का, कर्तव्य द्वारा जानता॥

(६५)

हैं राम स्वामी जगत के, दरबार मालिक का लगा।
वह धन्य सेवक है, हुआ, जो नित्य स्वामी का सगा॥
उस दिव्य स्वामी भाव मे, सचमुच भरा आनन्द है।
हनुमान जी का बज रहा, डंका, न पलभर बन्द है॥

(६६)

है पांचवी निष्ठा सरस, वह 'सखा' भाव प्रसिद्ध है।
पाखण्ड प्रभुके सामने, परित्याग-योग्य निषिद्ध है॥
जीवातमा अर्जुन बनै, विश्वातमा घनश्याम हैं।
जीवातमा सुग्रीव है, परित्रान दाता राम हैं॥

(६७)

निज प्रकृति से चुन लीजिये, निष्ठा स्वयं घनश्याम की ।
बस एक निष्ठा लीजिये, उस प्राणप्रिय भगवान की ॥
उस भावना को हर समय, निज ध्यान मे रख लीजिये ।
रख सामने उस लक्ष्को, फिर कर्म अपना कीजिये ॥

द्वितीय अध्याय

प्रथम परिच्छेद—अतीत की स्मृति

द्वितीय परिच्छेद—वर्तमान की दशा

द्वितीय अध्याय

पहला परिच्छेद

अतीत की स्मृति

(६८)

अत्यंत सुन्दर होगया, इतिहास इस संसार का ।
वाणी थकित होती निरख, उत्कर्ष उस आकार का ॥
आदर्श कितने होगये, सद्धर्म—भूषण, देश में ।
परमेश तक माने गये, इस देश में नरवेश में ॥

१—संसार के संत

(६९)

श्रीमान् 'दत्तात्रेय' जैसे, संत गिरनारी हुए ।
कर प्राप्त व्यापक ब्रह्मपद, विज्ञान गिरि-धारी हुए ॥
शिव मान कर सब सृष्टिको, हो भक्त सबके, शिव बने ।
गुरुदेव ! त्याग स्वरूप हैं, अनुराग वाले भी घने ॥

(७०)

'नारद' महोदय अमरपद ले, घूमते संसार मे ।
चलते सदा ही नीति से, अपने सदय व्यवहार मे ॥

देखो पुराणों मे अनेकों कर्म उनके गूंजते ।
ब्रह्मचर्य्य के आदर्श, नारद, को सभी नर पूजते ॥

(७१)

श्री 'बाल्मीकि' महान पद पर, हैं सुशोभित ब्रह्म से ।
निज कर्म द्वारा अटल हैं जग मध्य पाहन-खम्भ से ॥
ब्रह्मचर्य्य का ले लक्ष मनमे, कौन थे, क्या होगये ।
रक्षक बने 'श्री जानकी' के, राम भी पद धो गये ॥

(७२)

सब विश्व करता आरती, 'हनुमान' सच्चे संतकी ।
सुधि आप को है आदिकी, है सुरति जग के अंत की ॥
हैं अजर अविनाशी अलख, भगवान 'कजरी बन' बसे ।
जो मानते उनको नही, मन मध्य, प्रभु उन पर हँसें ॥

(७३)

'शुकदेव' जी ने तत्व सब, वशमे किये हैं योग से ।
जिनके भजन से छूटते हैं, जीव जड़ता—रोग से ॥
हरि रूप, नित्य निवास, तन युत राजते संसार मे ।
हो प्रकट घट-घट मे, सुरति की निरति के व्यवहार मे ॥

(७४)

'श्री कागराज' भशुण्डि, अनहद करे हरिनाम का ।
उस 'नीलगिरि' पर है सदा, सतयुग अचल विश्राम का ॥
वे संत पद पाकर हुए, है जगद्गुरु हरि मर्म के ।
सब के सहायक और हैं, संचालकर्त्ता धर्म के ॥

(७५)

गिरनार वाले संत एकादश, यहां हैं सर्वदा।
संसार संचालक वही, दे आपदा मे सम्पदा॥
साकार शिव हैं बोधमय, है नित्य जागृत रूप मे।
लटकी हुई जंजीर ग्यारह, देखिये, भव-कूप मे॥

२—संसार के साधु

(७६)

थे साधु, ऋषि, त्यागी, मुनी अवधूत, योगी, राम के।
कितने सफल साधक हुए, कैसे हुए वे काम के॥
जिनकी तपस्या को निरख, थे इन्द्र भी थर्रा गये।
थे भेद खोले योग के, कितने वड़े, कितने नये॥

(७७)

संसार मध्य अतीत के, है चिन्ह कितने खुशनुमा।
मन-बुद्धि के आकाश मे, हैं जगमगाते चन्द्रमा॥
अमृत भरे वे चन्द्र, अपनी किरण है, सरसा रहे।
निज मूक-भाषा से हमें, हरि-द्वार है दिखला रहे॥

(७८)

अपने मुनीशों की कथा, सर्वोच्च और अपार है।
उनकी कठिन करणी निरख, चेला सकल संसार है॥
कर्तव्य पर कितने निछावर, वदन अपना पलक में।
थे खलक भीतर घूमते, उस 'अलख' वाली झलक में॥

(७६)

उन के मनोहर दर्शनो से, पाप मिट जाते सभी।
था पुण्य मिलता, और मनसे, दूर होता तम तभी॥
थे, शान्तिदायक वचन उनके, हृदय शीतल हो रहे।
आनन्द आता था परम, जब वे अगम अनुभव कहे॥

(८०)

जो साधु बनता था, नहीं वह पाप करता था, कभी।
उस समय के, सब साधु थे, साधक बड़े सच्चे सभी॥
वे पुत्र थे, जगदीश के, भ्राता चराचर जीव के।
वे साधु पत्थर रूप थे, ब्रह्माण्ड रूपी नींव के॥

(८१)

बन में बसे, बनवास ले, पावन नदी के पास में।
फल-फूल-पत्तो से गुज़र करते, परम विश्वास से॥
सोते जहां थे वे, वहां सर्पादि भी सोते रहे।
उन योगियों पर सदय वे, व्याघ्रादि भी होते रहे॥

(८२)

एकान्त के आवास मे, थे धैर्य्य को पकड़े हुए।
प्रति अंग को थे 'शान्ति' डोरी से सदा जकड़े हुए॥
मुख थे बने रवि प्रात के, जाने न देते हर्ष को।
करते तपस्या रात-दिन, परमात्मा के दर्श को॥

(८३)

वल्कल बसन, रहते कुटी मे, जागते थे ध्यान में।
थे, कीर्ति-कंचन-कामिनी को त्याग, डूबे ज्ञान मे॥

भोजन नहीं, निद्रा नही, नारी नही, एकान्त था।
श्री यज्ञ वाले धूम से, रहता सुगन्धित प्रान्त था ॥

(८४)

'एकादशी' प्रतिवार, कितनी वार 'चन्द्रायण' रहे।
थे शीत-बर्षा-घाम के, प्रति वर्ष 'पारायण' सहे ॥
वारह बरस के बाद, अनुभव लिख दिया, निज नामसे।
उपकार कितना है हुआ, उन योगियो के काम से ॥

(८५)

पातंजली कृत 'योगसूत्रम्' ख्यात है संसार मे।
है नाव दुखिया पथिक की, इस घोर पारावार मे ॥
लाखों नरो ने है, सफलता प्राप्त की उस ग्रन्थ से।
सज्जन बचाये है गये, भूले भुलाये, पन्थ से ॥

(८६)

षट्शास्त्र, दर्शन, स्मृति तथा, गृह सूत्र, गीता कार थे।
व्याकरण, ज्योतिष, रमल, वैदिक के प्रणेताकार थे ॥
टीका रची है वेद की, साहित्य अनुपम रच गये।
योगीश वे, भूगोल भर के, नयन भीतर जँच गये ॥

(८७)

अब, योग बिन लेखक बने, तप के बिना कविजी बने।
तो भी अभागे, मूढ़ हम अभिमान मे रहते तने ॥
उन ग्रन्थ रत्नाकार से, हम लोग चोरी कर रहे।
धन के लिये 'लेखक' बने, पर, नाम ऊपर मर रहे ॥

(८८)

अब तक चला आता वही ऋषि मार्ग अपने लक्ष मे।
देखो लटकता है वही वैराग्य उन के वक्ष मे॥
आचार्य शंकर ने अभी दिखला दिया तप-तेज था।
श्रीयुत दयानँद का बदन ब्रह्मचर्य से लबरेज़ था॥

३—संसार के भक्त

(८६)

ज्ञानी हुए योगी हुए, हैं भक्त कितने हो गये।
निज भक्ति का आदर्श, अच्छी भांति जगमें बो गये॥
'प्रह्लाद' बालक ने दिखायी, भक्ति की करणी कड़ी।
क्षण मे बुलाया ईश को थी देखती दुनियां खड़ी॥

(६०)

'ध्रुव' थे कुंअर शिशु ही निरे, अत्यन्त कोमल गात के।
विश्वास मन मे रख लिया उपदेश सुन कर मात के॥
पाठक ! निहारो विपिन वह फिर देखिये शिशु भक्त को।
ध्रुव ने हिलाया शीघ्र ही विश्वातमा के तख्त को॥

(६१)

थे भक्त 'मोरध्वज' नृपति अनुराग था जगदीश का।
जिसने विसारा मोह अपने पुत्र के भी शीश का॥
'दशरथ' नृपति अति भक्त थे, जो कुछ किया अनुपम किया।
निज 'रामजी' को छोड़ते ही, प्राण तृण सा तज दिया॥

(६२)

थीं भक्त 'सवरीजी' महा अगणित दिवस तक तप किया ।
सुख छोड़ सब संसार का,प्रभु दर्श पाकर 'दम' लिया ॥
था प्रेम कितना हृदय में, कवि किस तरह वर्णन करे ।
हरि बेर जूठे खा लिये, आंसू विलोचन मे भरे ॥

(६३)

थे भक्तराज 'कबीरजी'—यद्यपि जुलाहे थे बने ।
हरि प्रेम के कारण कठिन, दुख द्वन्द भी पाये घने ॥
मरते समय 'मगहर' गये, होगे 'गधा' ही मोद में ।
सिर रख लिया भगवान ने, आकर तुरत निज गोद मे ॥

(६४)

निज कर्म कृत प्रारब्ध वश, था वदन पक्षी का मिला ।
उस पक्षिराज 'जटायु' ने,हरि भक्ति का जीता 'किला' ॥
राजा दशानन ने हिमालय तक उठाया था जहां ।
श्री राम के कारण मरा, लंकेश लड़कर के, वहां ॥

(६५)

हैं भक्त राजा 'भरथरी' भगवान के अनुराग में ।
तज राज्य भारत वर्ष का, सन्तोष पाया त्याग में ॥
नवयुवक राजा चल दिया, वन में, क़िले को छोड़ के ।
अनुराग सुख से तोड़ के, निज प्राण दुख से जोड़ के ॥

(६६)

थे भक्त कैसे 'सूरजी' उर में निरख भगवान को ।
निज नयन युग फोड़े वहीं, देखे नहीं अब आन को ॥

जब गिर गये थे कुए मे, तब स्वयं प्रभु आये वहां।
रो कर कहा यो सूरले, 'हे नाथ अब जाओ कहां' ॥

(६७)

श्रीमती 'मीरा' ने विमल, निज भक्ति का दर्शन किया।
नवयुवति, राजा की सुताने, सौख्य सब त्यागन किया ॥
पति ने जहर भेजा उसे, शरबत हुआ, प्रभु की दया।
तब, सर्प डाला गले मे, वह काल, माला बन गया ॥

(६८)

श्रीमान 'तुलसीदासजी' की भक्ति अति विख्यात है।
मुर्दा, जिलाया एक था, हरि भक्ति की क्या बात है ॥
दिल्लीश ने पकड़ा उन्हे, डाला भयानक जेल में।
दिल्ली हिलादी 'वानरो ने' क़िला तोड़ा खेल में।

(६६)

यूरोप के आचार्य थे, थे भक्त "ईसा" राम के।
अति शांत थे अति नम्र थे, सेवक सकल के काम के ॥
जड़वाद वाली जाति में, ले भक्ति वे आगे—बढ़े।
भगवान के ही नाम पर, हँसते हुये, सूली चढ़े ॥

(१००)

श्रीयुत 'मुहम्मद' भक्त थे लवलीन प्रभु के ध्यान में।
निश्चय परम रखते रहे निज लक्ष में, निज ज्ञान में ॥
निज प्रकृति द्वारा भक्ति करते, थे न टलते थे कभी।
समझे नहीं हैं अर्थ भी 'कुरआन' का हम सब अभी ॥

(१०१)

श्री 'रामकृष्ण' अपूर्व ही, परमातमा के भक्त थे ।
सारे मतो के मित्र थे, सब जाति के अनुरक्त थे ॥
निज नारि रक्खी साथ मे लेकिन विषय जाना नहीं ।
मा ! मा ! पुकारे रात-दिन, मा सिवा कुछ माना नहीं ॥

(१०२)

श्री 'रामतीर्थ' सुभक्त थे, थे पास एम० ए० क्लास वे ।
परमातमा के प्रेम मे रखते, सदा विश्वास वे ॥
घर छोड़ कर वन मे गये, रोते फिरे हरि-प्रेम मे ।
सर्पादि में लेटे रहे, अद्वैत वाले नेम मे ॥

४—ब्राह्मण

(१०३)

है विप्रपद मे अब तलक जगकी सुरति अटकी हुई ।
जग के अतीताकाश मे, वह चाँदनी छिटकी हुई ॥
इतिहास जय-जय कार करता, विप्र-पदकी सर्वदा ।
रघुनाथ जी ने ब्राह्मणो के पदकमल वन्दे सदा ॥

(१०४)

ब्रह्मचर्य्य को धारण किये, श्रुति-मार्ग पर आरूढ़ थे ।
थे वह महोदय कर्मरत, उनके सदाशय गूढ थे ॥
तनके सहित 'भृगुजी' गये, थे क्षीर-सागर, शान में ।
मारा चरण श्री विष्णुजी भगवान के हृद्धाम मे ॥

(१०५)

सब कहें श्रीमद् विष्णु जी के चरण का दर्शन कड़ा।
जो दर्श पाता ईशका वह समझता, निज को बड़ा ॥
पर विप्रवर 'भृगुनाथ' जी का, चरण हरि से, उच्च था।
विप्रो! तुम्हारे पूर्वजो के, सामने सब तुच्छ था ॥

(१०६)

गुरुदेव 'पाराशर' हुए जिनका महान प्रताप था।
जिनकी नजर के सामने, पानी 'अगिन' का ताप था ॥
'स्मृति, रची कितनी प्रबल शुभ नाम अब तक अमर है।
'प्यारे अनुग्रह' सतोगुणही, विप्र नामक लहर है ॥

(१०७)

इतिहास गाता है अमित, गुण, विप्र 'भारद्वाज' के।
प्रातः स्मरण के योग्य वे, कप्तान, विप्र-जहाज के ॥
जिनके चरण मे राम-लक्ष्मण-जानकी जी झुक गयीं।
वैभव दिखाया भरत को, सब शक्तियां थी, रुक गयीं ॥

(१०८)

थे 'कपिल' जी अवतार ही, सम्मार्ग 'सांख्य' प्रसिद्ध है।
उनके चरण का चिन्ह, भारत मध्य बिलकुल सिद्ध है ॥
गुरुदेव! विप्र 'वशिष्ठ' जी, रघुवंश से पूजित हुए।
वे अमर हैं गुणगण सकल, संसार में गूंजित हुए ॥

(१०९)

कितने क्षमासागर बने, वे विप्रता के मूल हैं।
करमें, त्रिगुण रूपी लिये, शंकर-समान, त्रिशूल हैं ॥

जय हो सदा, जय हो सदा, गुरुदेव संत 'वशिष्ठ' की।
जय विप्रकुल अवतंस की, जय हो हमारे 'इष्ट' की ॥

५—क्षत्रिय

(११०)

थे वास्तव में छत्रधारी वीर क्षत्री जाति मे।
कोई कसर बाकी नहीं, उनकी मनोहर ख्याति मे ॥
तन और मनकी शक्ति, उनसे अधिक किसने, प्राप्त की।
निज कीर्ति, क्षत्री जातिने भूगोल भरमें व्याप्त की ॥

(१११)

श्रीमान् 'पृथु' ने चक्र ले पृथ्वी सकल, समतल रची।
ऊंचे पहाड़ो को हटाया, कीर्ति दुनियां मे मची ॥
'रघु' ने विसारा राज्य सुख सर्वस्व उनका 'गाय' है।
क्या राज्य मे रक्खा मजा, वह राज्य सबकी 'हाय' है ॥

(११२)

तपवीर 'भागीरथ' नृपति, अपने अमित अभ्यास से।
गंगा उतारीं भूमि में, नीरव अलख आकाश से ॥
हैं तर चुके लाखो अधम लाखो अधम तर जायँगे।
कवि और पण्डित कीर्ति उनकी, सर्वदा ही गायँगे ॥

(११३)

श्रीमान 'दशरथ' नृपतिकी, करणी कठिन किस मुख कहूं।
उस 'कर्मवीर' नरेशके शुभ नाम पर, चुपके रहूं ॥
तदवीर देखो—कठिन तपसे- 'राम' का दर्शन किया।
तक़दीर देखो—पुत्र बनकर 'राम' ने था सुख दिया ॥

(११४)

श्री 'हरिश्चन्द्र' नृपाल कैसे, सत्यशोधक थे यहां।
दृष्टान्त उनके 'त्याग' जैसा, प्राप्त हो सकता कहां॥
तनभी दिया, मनभी दिया, सुखभी दिया निज राज दे।
था सत्य केवल ले लिया निज प्राणदे, कुल लाज दे॥

(११५)

श्री राम-लक्ष्मण, जानकी जी को, न क्षत्री जानिये।
जगदीश की सरकार को क्यों जाति भीतर, मानिये॥
पर, धन्य क्षत्रीजाति, जिसमे 'राम' का अवतार हो।
जिनके चरण के चिन्ह लख, कृतकृत्य सब संसार हो॥

(११६)

जिस जातिमे थे भीष्म, अर्जुन, कर्ण, शस्त्राचार्य से।
थे पूर्व विजयी भीमसे, सहदेव आदिक आर्य से॥
जिस वीर क्षत्रीजातिने था लक्ष मारा, मीनका॥
जिस जाति ने था पक्ष रक्खा, कष्टमे भी, दीनका।

(११७)

जिस जातिमे, श्रीयुत 'शिवाजी' से प्रतापी, शूर थे।
वे वीर अपने देशकी मर्याद-मद मे, चूर थे॥
जिस जातिने 'राणा प्रताप' समान, व्रतधारी किये।
किस देशकी किस जातिने, दृष्टान्त हैं ऐसे दिये॥

(११८)

जिस जातिने, अबतक चलायी, आन अपनी शान की।
जिस जाति पर है 'नजर' रहती विश्वपति भगवान की॥

उस वीर क्षत्री जातिकी, सुन्दर कथा अनमोल है।
' जानो अनुग्रह " क्षत्रियो के हाथ मे, भूगोल है॥

(११६)

क्षत्री हुए 'आल्हा' बड़े, जगदम्ब के वरभक्त थे।
'ऊदल' हिलाते थे सदा, दिल्लीश का भी तख्त थे॥
'मलखान' की गम्भीरता मे, वीरता थी छा रही।
रघुवंश वालो! क्षत्रियो! है याद पिछली आ रही॥

(१२०]

रानी 'गणेश कुमारि' ने, पति-व्यङ्ग पर, घर छोड़ के।
अवधेश लायीं 'ओड़छे', तप था किया जी तोड़ के॥
झांसी-नरेश्वरि 'लक्ष्मिबाई', बनी रणचण्डी जभी।
अँग्रेज सेना को भगाया, कीर्ति यह जाने सभी॥

(१२१)

क्षत्राणियो ने भी किया संग्राम अति, विकराल था।
वह अकथ है, वह अजब है, उस समय का जो हाल था॥
सतिया हजारो ही हुईं, क्षत्राणियां, निज तेज मे।
पति संग सोईं अग्नि मे, शमशान वाली सेज में॥

(१२२)

थी बालिकाओ मे भरी, मर्याद रक्षक लालिमा।
नवयौवनाओं मे नहीं, पाई, विषय की कालिमा॥
था बालकों में रक्त बहता, धर्म और स्वभाव का।
था मोह, प्राण न राज्य का, था मोह अपनी-नाव का॥

६--अतीत के वैश्य

(१२३)

वे 'गुप्त' है अब गुप्त, जिनकी गुप्त मति रहती रही।
माने गये लक्ष्मी तनय, अनुकूल गति रहती रही॥
करते सदा व्यापार थे, पर, धर्म-धन भी जानते।
थे दान ही को सूद या दरसूद दिलमे मानते।

(१२४)

रक्खा जिन्होने चंचला श्री लक्ष्मि को भी रोक के।
बनकर हितैषी लोक के, प्यारे बने परलोक के॥
भण्डार खाली कर दिये, जब प्रश्न आया कर्म का।
रक्खा जिन्होंने ध्यान था, राणा प्रतापी धर्म का॥

(१२५)

थे लक्ष्मि के वर भक्त वे, घर में विराजीं लक्ष्मी।
उस वैश्य कुल में, सब तरह के साज साजीं लक्ष्मी॥
गृह मे रमी श्री लक्ष्मी, मनमे विराजीं लक्ष्मी।
सौंदर्य द्वारा, बदन ऊपर, खूब साजीं लक्ष्मी॥

(१२६)

था "बचन" ही इस्टाम्प तब, डंका बजाथा 'साख' का।
रख मूंछ वाला बाल गिरवी, क़र्ज़ देते लाख का॥
परदेश जाकर वैश्य के घर, द्रव्य सारा रख दिया।
किसने किया था जाल तब, किसने किसे था छल लिया॥

(१२७)

वे शूद्र को निज बन्धु छोटा मान, अपनाते रहे।
पहिले खिलाते थे उन्हे, फिर शेष खुद खाते रहे॥
वे काम अपना भी करे, पर काम मे आते रहे।
श्री लक्ष्मि के ही संग गुण जगदीश के, गाते रहे॥

७..अतीत के शूद्र

(१२८)

प्रारब्ध द्वारा, शूद्र का तन था दिया विधि ने जिसे।
था कोप वह करता नहीं, इन्कार थी उसमें किसे॥
जैसा किया—वैसा हुआ, यह न्याय क्रम है आदि का।
यह चक्र सृष्टि-स्वरूप है, इस हिन्दुजाति अनादि का॥

(१२९)

डरते सदा थे शूद्र तब, अब फिर न कोई भूल हो।
पर जन्म मे पुनि-पुनि नहीं, जिससे कुफल का शूल हो॥
चलते झुकाये शीस थे, मर्याद के अनुराग में।
थे क्रोध करते वे नहीं, विद्वेष अथवा राग में॥

(१३०)

वे दृष्टि अपनी थे उठाते, शीस नेरे तक नहीं।
वे आंख निज डाले कभी, द्विज नेत्र में भरसक, नहीं॥
मृदु-नम्र-सभ्य-सुशीलतामय शब्द उनके थे सदा।
द्विज के चरण वे पूजते, प्रिय थे हमें वे सर्वदा॥

८-अतीतकी स्त्रियां

(१३१)

थे पुरुष तब के देवता, थी देवियां भी नारियां।
कर्त्तव्यपथ पर थी चली, सुकुमारियां, बलिहारियां॥
कन्या सरस्वति रूप थी, व्याही हुई थी लक्ष्मी।
वृद्धा बनी 'जगदम्ब' थीं, उनमे न थी कोई कमी॥

(१३२)

थी मोह-माया वश नहीं, देखो सुमित्रा की कथा।
निज पुत्र से बोली मुदित, प्रिय शिष्य प्रति सद्गुरु यथा॥
जिस नारि का सुत हो नही, परमातमा की चाह मे।
उस नारि ही को डाल दो, जलती 'अगिन' की दाह मे॥

(१३३)

उपकार का था ध्यान अति, निज लोभ का भी त्याग था।
निज धर्म मे अनुराग था, कर्त्तव्य मे अनुराग था॥
परदेश मे, उस वृद्ध माता की कथा सुन कर सभी।
था भीम को भेजा, निशाचर निकट, कुन्ती ने तभी॥

(१३४)

मन होचुका जिसका जभी, तो अन्य को चाहा नहीं।
थी 'सत्यवान' कुमार की अल्पायु भी जानी वही॥
'सावित्रि' ने पलटी नही, अपने हृदय की भावना।
मुर्दा जिलाया, सतीने, है धन्य प्रेम निबाहना॥

(१३५)

अंधा मिला पति भाग्यवश, निज दोष निज मस्तक लिया।
थी नेत्र मे पट्टी बंधी, सुख त्याग गांधारी किया॥
उनके हृदय भीतर अगर, पति से घृणा आती कही।
तो दृष्टि अपनी से 'सुयोधन' वज्र सा बनता नही॥

(१३६)

अनुसूइया ने था किया, पति-भक्ति वाला योग था।
निज शक्ति का संसार को, दिखला दिया उद्योग था॥
उन देवताओं ने जभी, सयोग छलने का किया।
बालक बना डाला उन्हे, निज पुत्र कह कर हंस दिया॥

(१३७)

जिस धनुष को कोई उठा सकता नहीं, संसार में।
उस शिव-धनुप को जानकी ने रख दिया था, द्वार में॥
जो जानकी थीं चित्र बानर के निरख "भीता" हुईं।
पति, संग बनवासी बनीं, सच्ची सती सीता हुईं॥

(१३८)

पतिसंग सारे सुख किये, पतिसंग सारे दुख सहे।
पति से कुपित होकर कभी, कड़वे वचन कब थे कहे॥
परदा किया तो आप को जाना किसी ने, खलक मे।
लडने गयीं तो फिर हजारो वीर काटे, पलक में॥

(१३९)

विद्वान वे ऐसी हुईं, श्रुति की ऋचाऐं रच गयी।
ब्रह्मचर्य भी धारण किया, मनसिज छली से बच गयीं॥

माता बनीं तो फिर यशोदा और कौशिल्या बनीं।
काग़ज़ बहुत कम और शक्ति स्वभाव की महिमा घनीं ॥

९—अंतिम शब्द

(१४०)

थी वीरता मे भी सरसता, युद्ध मे भी क्षमा थी ।
थी बस्तियों मे भी तपस्या, जंगलो मे रमा थी ॥
अनुराग भीतर त्याग था, थी, शक्ति पर उपकार को ।
धन धर्मही का दास था, था रूप केवल प्यार को ॥

(१४१)

आचार में व्यवहार मे विज्ञान मे सम्मान मे ।
अनुभूति योग विभूति मे, षट्कर्म के व्यवधान मे ॥
घरमे, विपिन मे, और जीवन मे, मरण मे शूर थे ।
क्या क्या कहे गुण पूर्वजोंके, समझ लो "भरपूर" थे ॥

(१४२)

पाठक ! हृदय में देख लीजे, वाटिका निज देशकी ।
कंटक निकालो क्लेश का, उलझन हटाओ क्लेशकी ॥
इस द्वैत वाले सूत्र को, पुरुषार्थ द्वारा, तोड़ दो ।
विद्वेष का घट फोड़ दो, छल छोड़, गतिको मोड़दो ॥

द्वितीय परिच्छेद

वर्तमान की दशा

१०—वर्तमान के सन्त

तम छा गया चहुंओर से, पाताल से—आकास से।
अध्यास से, अभ्याससे, आभाससे, सहवाससे॥
कमजोर हैं, अभिमान है, बस और सब जाता रहा।
'भाई अनुग्रह' हाल हमसे, जायगा कैसे कहा॥

(१४४)

था ठीक जो कुछ होगया, है ठीक जो कुछ आ रहा।
पर, वर्तमान निहारिये, जो सामने से जा रहा॥
अब समय आया है कठिन, जो मौत मे सोता हुआ।
यह वर्तमान निहारिये, जो है पड़ा रोता हुआ॥

(१४५)

'श्रीसत' अपना नाम रखना हाथ अपने में, जहां।
पाते 'महात्मा' नाम थोड़ी 'गप्प' करने मे जहां॥
वनते 'जगद्गुरु' आप ही, अपने मुखों से हम जहां।
अंधेर कितना है वहां, अंधेर कितना है वहां॥

(१४६)

'षटचक्र' भी जागा नही, शिवनेत्र, तक जाना नहीं।
अभ्यास 'कुण्डलिनी' जगाने का कभी ठाना नहीं॥

कब 'आत्म-ज्ञान' निधान वे जब 'तत्व ज्ञान' न जानते।
तनकी अमरता दूर कब, गति-काल की पहिचानते॥

(१४७)

है "ज्ञान सृष्टि-समिष्टि संयुत व्यष्टि" का उनको नही।
आता न उनको भ्रमण करना, 'लोक-लोकों' का कही॥
'मृतदेह मध्य प्रवेश' करना जानते हैं वे नहीं।
देखी नही है स्वप्न में, 'गिरनार की गद्दी' कहीं॥

(१४८)

'प्रारब्ध' भी जानी नहीं, वे मृत्यु को जानें नही।
'विक्षेप' को देखा नही 'पुरुषार्थ' को मानें नहीं॥
बस, बन गये हम 'संत', देखो कलियुगी लीला यही।
उनको पठादो जेल में, तब बुद्धि शायद हो, सही॥

११—वर्तमान के साधु

(१४९)

हम हैं 'उदासी' पंथ के, 'सन्यास है हमने लिया।
हैं राज योग न जानते, हठ योग थोड़ा है किया॥
हम ऊर्ध्वरेता हैं नहीं, तो ब्रह्मचारी खाक़ हैं।
हम साधु साधक हैं नहीं, नापाक हैं—नापाक है॥

(१५०)

कामिनि न छूटी हृदय से, कंचन नहीं त्यागा गया।
है कीर्ति वाला रोग पीछे, लग गया देखो नया॥

विद्या नहीं है पास मे, बकवाद में विद्वान है।
हैं दास इन्द्रय पांच के, तो भी दिखाते शान हैं॥

(१५१)

वे जानते हैं 'चरस' पीना खूब गांजा फूँकते।
वे पान जर्दा युक्त खाकर, मुँह उठाकर थूकते॥
वे हैं गृहस्थों को समझते, नीच अपने से सदा॥
तमरूप कलियुग भक्त वे, हैं रक्त चूसे सर्वदा।

१२--वर्तमान के भक्त

(१५२)

गुरु हैं हमारे अवधवासी, संत मस्त महंत हैं।
वे पंथ दोनों जानते, सुप्रसिद्ध 'पालट पंथ' हैं॥
दस ग्राम है जागीर के, हाथी बँधा गुरुद्वार मे।
चेले हजारों ही खड़े, गुरुदेव के दरबार मे॥

(१५३)

था कान फूँका एक दिन, कंठी गले मे डाल दी।
थी राह बिगड़ी स्वर्ग की, गुरुने समस्त सँभाल दी॥
हम भक्त हैं श्रीराम के, बस नाम रटना जानते।
गुरुदेव हैं जगदीश, इतनी बात भी हैं, मानते॥

(१५४)

परसाल जाड़ों में गया, निज नार, कन्या साथ थी।
कन्या हमारी, गुरू को, दिखला रही जब हाथ थी॥

उपदेश दे रति-शास्त्र का, था हाथ फेरा सब कहीं।
उस समय उनमे 'कृष्ण' थे, कुछ बात ओछी थी नहीं॥

१३ – वर्तमान के ब्राह्मण

(१५५)

हम 'शुक्ल' हैं वह 'मिश्र' हैं वह नीच हैं हम उच्च हैं।
हम 'कान्यकुब्ज' प्रसिद्ध हैं, वे सब त्रिपाठि अस्वच्छ हैं॥
बस ज्ञान है अब विप्रमंडल मध्य, केवल फूट का।
गरदन अभी देखी नहीं, वे पैर नापें ऊंट का॥

(१५६)

कुछ 'संसकीरत घोख' ली, कुछ 'फक्किकाएं' फांक के।
'जोतिख' तनिकसी सीखके, कुछ 'लगन-साइत' आंकके॥
बस 'श्राद्ध' सबका कर दिया, कुश-हाथ मे पकड़े हुए।
दिन भर 'जनेऊ' रगड़ते, वे विप्र वर अकड़े हुए॥

(१५७)

हैं बाल-वृद्ध विवाह के, कारण पुरोहित ग्राम के।
है चतुर चतुरानन वही, हतभाग्य 'विधवा' नाम के॥
पण्डे, पुजारी बन सके, यह योग्यता अविशेप है।
विप्रो ! विचारो तो जरा, कैसा तुम्हारा वेश है॥

(१५८)

तब मानमे भरपूर थे, अपमान में अब चूर हैं।
'भिश्ती-बबर्ची-पीर-खर' के नाम से मशहूर हैं॥

वरदानदाता आप थे, सो भीख पर निर्भर हुए।
इस्टेशनों पर जल पिलाने के लिये नौकर हुए॥

१४--वर्तमान के क्षत्री

(१५६)

कुरता पहिन तनजेब का, मुख पान द्वारा लाल है।
सुरमा लगाया दिवस मे, रघुवंश का यह हाल है॥
धोती बहुत बारीक है, है हाथ मे पतली छड़ी।
अर्जुन! तुम्हारी जाति की, है सुस्त बिलकुल ही घड़ी॥

(१६०)

नौकर लिये बन्दूक है, आगे लपकते जा रहे।
मेला निरखने के लिये, पीछे कुंअर जी! आ रहे॥
जागीर के सारे कृषक, भूखे तड़पते है सदा।
ठाकुर निरखते रण्डियों के, नाच की वांकी अदा॥

(१६१)

घर पर पढ़ाने के लिये, लाये गये 'टीचर' नये।
गाली सुनादी आपने, गुरुजी खिसक घर को गये॥
तो भी अशिक्षित हैं नहीं, हैं छांट देते फारसी।
कहते तुरत हैं-आइना, जो कह न सकते 'आरसी'॥

(१६२)

है गोपियो के वे 'कन्हैया', और भइया-चोर के।
हैं सिद्ध साक्षी-वीर वे, इस ओर के उस ओर के॥

पूरे शिकारी आप हैं सब मोर मारे ग्राम के।
तलवार बकरी पर चलै कितने बहादुर काम के॥

(१६३)

अब कौंसिलो मे जा रहे, घर का ज़माना आयगा।
अविशेष रक्त किसान से, अब इत्र खींचा जायगा॥
क़ानून बहुमत से बनावेंगे, अछूते स्वार्थ के।
वे कर रहे हैं कार्य, अपने वंश के परमार्थ के॥

(१६४)

यद्यपि हमारी 'वीर क्षत्री जाति, आगे आयगी।
यद्यपि भविष्यत में तुम्हारी, कीर्ति पुनि सरसायगी॥
यद्यपि तुम्हारे हाथ से, झण्डा उठेगा देश का।
पर, वर्तमान समाज में, ठेका लिये हो क्लेश का॥

(१६५)

जो वे कबाबी होगये, जो वे शराबी होगये।
जो रण्डियों के झुण्ड में, नंगे बदन हो सो गये॥
तो ख़र्च किसका है हुआ, है काम क्या अपमान का।
उनका 'मुनाफा' उड़ रहा, जो रक्त दीन किसान का॥

(१६६)

हम दिल दुखाने के लिये, आलोचना लिखते नहीं।
सच्ची भलाई छोड़ कर, कवि से बुराई हो कहीं॥
सबकी हँसी करते नहीं, जो क्रूर हैं, सो शूर हों।
कड़वी दवा का लक्ष है—सब रोग तन से दूर हों॥

१५—वर्तमान चित्रगुप्त वंश

(१६७)

विधि ने समूचे अङ्ग से, कायस्थ को, पैदा किया।
साहित्य का सब काम उनको, प्रेम से, साग्रह दिया॥
तलवार को भी, कलम के आधीन ब्रह्मा ने किया।
कायस्थ! ब्रह्मा ने भला, क्या आपको कुछ कम दिया॥

(१६८)

क्या आपने उपयोग विधि की शक्ति का, अच्छा किया।
श्री चित्रगुप्त महात्मा को सुख दिया या दुख दिया॥
ब्रह्मचर्य के दुश्मन बने, खाया सभी, छोड़ा किसे।
कूटा उसे, लूटा इसे, फोड़ा उसे, तोड़ा इसे॥

(१६९)

है सत्य से क्यों शत्रुता, पाखण्ड से क्यों मित्रता।
है चुगलखोरी भी बहुत, छाई अनूप विचित्रता॥
किसके हुए? बलिदान अपने स्वार्थ का कब कब किया।
अवतार श्रीमान् ने इसीके हेतु, धरणी पर लिया॥

(१७०)

थे बन्धु बारह, आज 'बारह-बाट' होकर घूमते।
बस नौकरी है जिन्दगी, द्वार सबके चूमते॥
निज कर्म से सहते सदा, प्रारब्ध वाली ताप हैं।
लेकिन दहेजों की प्रथा के, पृष्टपोषक आप हैं॥

(१७१)

हैं 'ब्रह्मचारी' आपकी इस जाति में, कोई, कहीं।
अब तक पहलवानी दिखा कर कीर्ति पाई है नही॥
उलटे क़लम के जोर से, वस पेट-पालन जानते।
तो भी सकल को मूर्ख, निजको अक्ल 'मन्द' बखानते॥

(१७२)

मित्रो! नही है इस्ट हमको, आपके अपमान का।
है ध्येय कवि के लक्ष मे, तव वंश के सम्मान का॥
ब्रह्मचर्य, खेती, संस्कृत, तप दान कविता सीखिये।
अपवित्र भोजन मत करो, हम मांगते हैं भीख ये॥

१६—वर्तमान वैश्य समाज

(१७३)

जो है विधाता उदर से, उत्पन्न वैश्य समाज, ये।
सो उदर सबके चाटकर, बैठे हुए हैं आज, ये॥
मशहूर है संसार में सुप्रसिद्ध सट्टेबाज, ये।
कितना बढ़ाने मे निपुण हैं, व्याज ऊपर व्याज ये॥

(१७४)

सत वचन के हृद्धाम मे, लाठी जमादी आपने।
करुणा कहां, है भंग उसको भी, पिलादी आपने॥
थी साख वैश्य समाज की सो भी उठादी आपने।
इस दीन भारत वर्ष की जड़ही हिलादी आपने॥

(१७५)

व्यापार अपना है यही, सब अन्न बाहर भेजना।
कंकड़ मंगाना देश में, बाहर जवाहर भेजना॥
दो चार पैसे लूट कर, घर में जमा जो कर लिये।
'राजा' बनेंगे अब हमी, उत्पात कितने थे किये॥

(१७६)

दल्लाल बन कर ऐंठते हैं, लोग मिथ्या ख्याति मे।
कितनी बुरी है चाल देखो, मारवाड़ी-जाति मे॥
नौकर करें वे ब्राह्मण, क्या-क्या न सेवा ले रहे।
अपमान है वह कौनसा, उनको नहीं जो दे रहे॥

(१७७)

हो देखना वह दृश्य तो, श्रीमान् कलकत्ते चले।
जो-जो कराते विप्र से, सो देख, अपने कर मलें॥
हैं सेठ कर स्नान, जाते मांग सिरमे, खींचने।
वह विप्र नौकर जा रहा, धोती नहाई फीचने॥

(१७८)

धोती धुलाते सिर्फ तो भी खैर-कलियुग मानते।
वे लोग आगे और भी, हैं, पाप करना ठानते॥
टट्टी गये थे सेठ जी, धो हाथ, आते सामने।
वह विप्र नौकर जा रहा, नापाक लोटा, माजने॥

(१७९)

हम दिल दुखाने के लिये, कुछ आपसे कहते नहीं।
चिन्ता यही है और भी नीचे न गिरना हो कहीं॥

है वृद्ध करते व्याह, विप्रो को रुलाते हो सही।
हे धर्म-शील निधान वैश्यो ! नाक किसकी कट रही ॥

(१८०)

१७—वर्तमान के शूद्र

अब शूद्र सेवक हैं नहीं, पैसा प्रथम ही दीजिये।
यदि वात कहिये एक तो, उत्तर डवल ले लीजिये ॥
बस शूद्र का सब हाल, इतनी बात से पहिचान लो।
अब तक रहे 'नाई' बने, अब,'विप्र' उनको मान लो ॥

(१८१)

है शूद्र 'वर्मा' बन रहे, धारण जनेऊ कर लिया।
सेवा विसारी हृदय से, अभिमान मय जीवन किया ॥
हम हिन्दुओ के वर्ण की, सारी व्यवस्था मिट रही।
क्या रूप होगा हिन्दुओ ! चिन्ता बड़ी सी है यही ॥

१८—वर्तमान की स्त्रियां

(१८२)

विद्या निकट उनके नहीं, बिलकुल अविद्या रूप है।
करती भयंकर जा रही, संसार का भवकूप हैं॥
जो थी गृहस्थी रूप रथ की एक 'पहिया' सिद्ध वे।
अब तो गृहस्थी रूप मरघट का बनी हैं गिद्ध वे ॥

(१८३)

बकवाद करना सीख कर झगड़ा उठाना जानती।
वे मानती है जो कि अपने हृदय मे सच मानतीं ॥

पति, सासु, देवर, जेठ आदिक खूब आदर पा रहे।
है कसर पिटने की रही, गाली अभी हैं खा रहे॥

(१८४)

फूहर महा हैं, कर्म सब, सुन्दर सफाई के नही।
हैं भिनभिनाती मक्खियां, है घूमते कुत्ते कहीं॥
बिस्तर बिछे हैं रात के, सन्तान का मैला पड़ा।
पानी भरा है देखिये, मैला बहुत, फूटा घड़ा॥

(१८५)

भोजन कहां स्वादिष्ट है, वाणी नहीं अनुकूल है।
उपदेश वाली बात उनको, दीखती ज्यो शूल है॥
है प्यार गहनो पर बहुत, वे अवगुणो का धाम हैं।
अब तो गृहस्थी-धर्म के, बिगड़े हुए सब काम हैं॥

(१८६)

शिक्षा बिना, वे रेल मे चढ़ कर, लुटाती माल हैं।
शिक्षा बिना, बाज़ार में, पाती हसी तत्काल हैं॥
शिक्षा बिना, ही बाल विधवा, जाति, वेश्या रूप है।
शिक्षा बिना, संसार उनके लिये, दुख का कूप है॥

१९—शिक्षित स्त्रियों का अपमान

(१८७)

जो हैं सुशिक्षित देवियां, दे उन्हे हम अपमान हैं।
जो मानने के योग्य हैं, उनको न देते मान हैं॥

उनको समझते पापिनी, उनकी हंसी करते सदा।
'रामाअनुग्रह' देखिये, दोनो तरह है आपदा॥

(१८८)

सम्मान करना था सदा, उनको बराबर जान के।
निज लड़कियां सौंपे उन्हे, गुरु रूप मे पहिचान के॥
उनकी मदद से, रूढ़ियां घर की मिटानी चाहिये।
उनकी मदद से, नारियां ऊपर उठानी चाहिये॥

(१८६)

शिक्षा बिना संतान पालन, जान-पाया था नहीं।
शिक्षा बिना निज पेट पालन, समझ पाया था कहीं॥
थीं पेट ही की व्याधि से, वे, सत्य अपना खोरही।
शिक्षा बिना ही वे, विधर्मी जाति की थीं होरही॥

(१६०)

सन्तान की मैशीन उनको, मानना अब छोड़ दो।
भोजन बनाने की कला, भी जानना अब छोड़ दो॥
बस! भोग की पुतली समझना, दूर ही कर दीजिये।
अतएव, शिक्षित बहिन का, सम्मान दिल से कीजिये॥

२०—पतिव्रताओं के प्रति लापरवाही

(१६१)

गृह देवियों का मान, जब से, हिन्द मे कम हो गया।
तब से हमारा भाग्य वैभव, एकदम से सो गया॥

जो मूल मे कांटा लगा, तो क्षेम कैसे हो सके।
यह पाप वह है, यत्न लाखो, भी न जिसको खो सके ॥

(१६२)

जिस भवन मे दुख पा रही है, नारियां, सन्ताप से।
वह भवन सत्यानाश मे, मिल जायगा निज पाप से ॥
उसकी कुशल रहती नहीं, हो कोप जिस पर शक्ति का।
यदि शक्ति रूठी हो, भला. फल क्या मिलेगा भक्ति का ॥

(१६३)

इन देवियो के कोप से, दुर्गम किले खंडहर हुए।
इन देवियो के मान से, बन भी विभव सागर हुए ॥
जिनको मिली हो विश्व में, मर्याद 'माता' नाम की।
फिर कौन परिभाषा लिखे, उनके अलौकिक काम की ॥

(१६४)

निज बालिकाओ को न शिक्षा, दे रहे अनुराग से।
वे जल रहे हैं मूढता वश, द्वेष वाली आग से ॥
शिक्षा चरित्र बिगाड़ती, यह भारती पर धूल है।
जानो समझ के फेर से, यह तो भयानक भूल है ॥

(१६५)

ये बात लिखलो हृदय मे, सिद्धान्त अनुभव का यही।
है शास्त्र का भी मत वही, गुरुदेव की शिक्षा वही ॥
जिनमे स्वभाविक दोष है, उनको न पहरा डाटता।
जो शुद्ध अन्तःकरण हैं, उनको न पढ़ना काटता ॥

(१९६)

वह चरित वाली बात है, निज निज स्वभाव स्वरूप ही।
शिक्षा सदा अमृत भरी, शिक्षा सदैव अनूप ही॥
परदा करो, पहरा करो, उनको पढ़ाना भी नहीं।
जो दृष्टि हो तो देख लो, ये सब बचा सकता कहीं॥

(१९७)

है मूढ़ माता के सकल सुत, बुद्धि-रोगी दीखते।
वे धन कमा सकते नहीं, अतएव छलना सीखते॥
उन सर्व परदे वालियों के, पुत्र परदे में रहे।
पत्ता हिला तो डर गये, अपमान दुनियां में सहे॥

(१९८)

हे भाइयो! निज शक्ति का, क्यों ह्रास ऐसा कर रहे।
क्यों मारते हो जननि को, क्यों साथ खुद भी मर रहे॥
विश्वास उनका भी करो, विश्वास अपना भी करो।
साहस करो! साहस करो, उन देवियों से मत डरो॥

२१--वर्तमान विधवा-समाज

(१९९)

उन नारियों में हो रही, वैधव्य की भरमार है।
रोने नहीं देती उन्हे, पड़ती गजब की मार है॥
शिशु बालकों के व्याह से, विधवा जगत भर सा गया।
लख मूर्ति विधवा नारि की, संसार अब डर सा गया॥

(२००)

हा ! पुरुष करता व्याह कितने, और सुख से सो रहा।
मन उस विचारी नारि का, दिन रात व्याकुल हो रहा॥
जो व्याह करना चाहती, कर व्याह उनका दीजिये।
जिनको विवाह विरोध हो, प्रतिपाल उनका कीजिये॥

(२०१)

प्रतिवर्ष कितनी बाल-विधवा, धर्म अपना खो रहीं ?
माता-पिता को और हिन्दू-जाति को वे, रो रहीं॥
हैं भागती वे मुसल्मानों संग, बहकाई हुई।
मिलतीं हज़ारों 'चौक' पर अत्यन्त दुख पाई हुई॥

(२०२)

है जा रहा विधवा महादल, पाप वाले पंक मे।
लो देख लो सन्तान मरती, आज माके अंक मे॥
या पुत्र पैदा कर रहीं वे, मुसल्मानी धर्म के।
हैं पाप छाये जाति में हम हिन्दुओं के कर्म के॥

(२०३)

कितने धनी जन खर्च करते, रण्डियों के प्रेम में।
ले आइये उनको पकड़, विधवा सहायक नेम मे॥
धन और आदर से उन्हें, अपनाइये ! अपनाइये।
कहकर 'अभागिन' दुःख उनका, अधिक मत बढ़वाइये॥

(२०४)

जो हो गयी विधवा कहीं, तो पाप उसका है नहीं।
जो मर रहा है मनुज सो, निज पाप से मरता वहीं॥

निज कर्म से, निज प्राण की, रक्षा मनुज करता नहीं।
निज नारि वाले पुण्य लेने के लिये लड़ता वही॥

(२०५)

सुख-दु:ख जीना और मरना, आप अपना कर्म है।
सम्बन्ध आपस का नहीं, यह गुप्त विधि का मर्म है॥
निज पाप का लांछन लगाना गैर पर अन्याय है।
हाँ, निबल ऊपर क्रोध करना, भी यहां अध्याय है॥

(२०६)

आश्रम खुला दीजे बड़े, रह सके विधवाएँ जहां।
शिक्षा दिलाओ धर्म की, शिक्षा बिना जीवन कहां॥
सीना, पिरोना और दाई आदि बीसो कर्म है।
अपने समाज सुधार के, बतलाइये जो मर्म है॥

(२०७)

जो आप सुधि लेंगे नही, तो जाति वह मिट जायगी।
मुर्दुमशुमारी हिन्दुओ की, एकदम घट जायगी॥
उन नारियों के आंसुओ से, भर गया है देश ये।
हैं दे रही निज शाप द्वारा, हिन्दुओं को क्लेश ये॥

(२०८)

जो बालकों का ब्याह करना, रोक दे सहयोग से।
जो वृद्ध जनका ब्याह करना, रोक दे उद्योग से॥
जो बालकों में ब्रह्मचारी-धर्म अनुपम आ सके।
दुख-दर्द तो उस दीन विधवा जाति का, कम जा सके॥

(२०६)

इस दीन नारी जाति के, दुख दर्द सारे दूर हो।
इस शक्तिपूजन धर्म में हम लोग पुनि मशहूर हो॥
इन देवियों को मान दो सब भांति से सम्मान दो।
शिक्षा सुहावनि दीजिये, निर्भ्रान्ति सच्चा ज्ञान दो॥

(२१०)

वे मित्र हैं, दासी नहीं, वे बन्धु जैसी मीत हैं।
उनके हृदय कोमल बहुत, मानो सरस नवनीत हैं॥
वे प्रेम की हैं मूर्तियां, वे धर्म पर आसीन हैं।
वे ईश की सन्तान है, फिर आपसे क्यो हीन हैं॥

२२—वर्तमानकी सभाएं

(२११)

दिन रात खुलती जा रहीं नूतन सभाये देश मे।
प्रस्ताव करतीं पास अगणित जोश के आवेश मे॥
फल आज तक दीखा नही, बस टांय टांय कर फिस हुई।
तलवार लेने को चले, पाई नहीं छोटी सुई॥

(२१२)

चन्दा हजम कारी सुधारक लोग पल पल बढ़ रहे।
उन स्वार्थ सिद्धो के चरित अखवार मे हम पढ़ रहे॥
कोई सभा ऐसी नहीं जिसमे न हो मत भिन्नता।
दिलसे भुलाई मित्रता मनमे जमाई खिन्नता॥

२३--वर्तमान के उपदेशक

(२१३)

बकवाद कारी लोग अब उपदेश देते हैं यहां।
कहना उन्हे है दूसरा, है दूसरा करना वहां ॥
अपराध भाजन ईश के सम्मुख हुये तो दुख नही ॥
सम्मान भाजन हैं जगत मे पा रहे सुख सब कहीं ॥

(२१४)

केवल मनोरंजन करें जब लोग आते सामने।
मतलब नहीं है काम से, पकड़ा उन्हे है नामने ॥
उन्नति नहीं अपनी हुई, उन्नति पराई कर रहे।
वे राग गाते त्याग का, खुद त्याग करते डर रहे ॥

२४—वर्तमानके नेता

(२१५)

प्रभु से नहीं आज्ञा मिली, प्रभु शक्ति भी चुप चाप है।
तो भी सताया लीडरो को लीडरी का ताप है ॥
अज्ञान निज खोया नही, पाया न अवनति का पता।
सद्‌गुरु कभी खोजा नहीं, जो मार्ग दे सकता बता ॥

२५—वर्तमान के संपादक

(२१६)

वे,, लीडरो की दुम पकड़, चीं-ची मचाते खूब ही।
ऊपर उछलते भी नहीं, जाते न बिल्कुल डूब ही ॥

सहयोगियों के साथ, उनकी पहलवानी हो रही ।
सम्पादकों की गति, विधाता से न जा सकती कही ॥

(२१७)

भरकर प्रथम निज जोश मे, पिस्तोल अपनी दाग दी ।
गरदन जभी पकड़ी गयी, तो तुरत माफी मांग दी ॥
पाई खबर सो छापदी, प्रतिवाद भी छप जायगा ।
भगवान ! उनको किस दिवस, लिखना कलम से आयगा ॥

२६–वर्तमान के लेखक

(२१८)

घी–दूध भोजन को नहीं, चिन्ता गृहस्थी की बड़ी ।
भारी समस्या द्रव्य की, मुख खोलकर आगे खड़ी ॥
तप तेज से हैं शून्य, भोगी, खोपड़ी है जरा सी ।
लिखने चले पोथी अहो, अत्यन्त विस्तृत धरा सी ॥

२७–वर्तमान के कवि

(२१९)

हैं शत्रु पिंगल–मार्ग के, प्रतिभा अभी जागी कहां ?
मौलिक बनेंगे किस तरह, अज्ञानता छाई वहां ॥
हैं भाव ठगना जानते, निज नाम के भूखे बड़े ।
अभिमान के पुतले बने, आकाश के ऊपर खड़े ॥

२८—वर्तमान के ज्योतिषी

(२२०)

ग्रह-फेर है खुद पर पड़ा, ग्रह-द्वार तक देखा नहीं।
ग्रह-चाल भी परखी नहीं, बदनाम होते सब कहीं॥
तपहीन, कहते जो जभी, सो झूठ होता है वही।
हैं ज्योतिषी भूले हुये, ज्योतिष भला मिथ्या कहीं॥

२९—वर्तमान के वैद्य

(२२१)

सब हाल पूछा प्रथम ही, फिर हाथ नाड़ी पर दिया।
दो चार पुस्तक देख, नुस्ख़ा रोग नाशक रच लिया॥
उन ऊंट वैद्यों की कथा, हमसे नहीं जाती कही।
उनकी कृपा से वैद्य कुल की, सब प्रतिष्ठा उठ रही॥

(२२२)

विज्ञापनों की ओट से मुर्दे जिलाते है यहां।
बस एक औषधि से हज़ारो रोग जाते है, यहां॥
जो लाभ होगा कुछ नही, तो दाम उनका दे सके?
हम तो कहें, उत्तर न ग्राहक, वैद्य जी से ले सके॥

३०—वर्तमान के पुजारी

(२२३)

है मूर्ति का विज्ञान, उनकी बुद्धि में, आता नहीं।
है मूर्ति 'टेलीफोन' इतनी बात भी, कहते कहीं?

मन में नहीं हरिभक्ति है, 'परसाद' निज को रख लिया।
कैवल्य 'चरणामृत' सकल, दर्शक जनों को दे दिया॥

३१—वर्तमान के महन्त

(२२४)

जब मूर्ति की हो आरती, तब तैल वे लगवा रहे।
रण्डी बुलाकर उत्सवों पर, नाच हैं करवा रहे॥
हैं मूर्ति की ही ओर अपने, चरण रख, बैठे हुए।
ये लोग अपने 'भाग्य' पर हैं इस कदर ऐंठे हुए॥

(२२५)

वे, दर्शकों के सामने बनते बड़े, हुक्काम से।
मतलब नहीं निज धर्म से, है काम केवल दाम से॥
कोई नया सा 'माल' देखा तो गिराते, राल हैं।
गुण्डे वहां से पल रहे, फैले हजारो जाल हैं॥

३२—वर्तमान के तीर्थ

(२२६)

जो दिव्य थल ऋषि और मुनियों के तपस्याधाम थे।
जिन भूमिखण्डो मे रहे, श्रीकृष्ण, सीताराम थे॥
सबसे अधिक कुविचार का, संग्रह वहा पर, दीखता।
जाकर वहां पर यात्रिदल, है दोष नूतन सीखता॥

३३—वर्तमान के पण्डे

(२२७)

बन स्वर्ग की सीढ़ी खड़े, पण्डे हजारों तीर्थ मे।
धब्बा लगाते है यही, उस तीर्थ वाली कीर्ति मे॥
लड़ना, झगड़ना, व्यर्थ अड़ना सीखकर पण्डे हुये।
बन मूर्ति कुत्सित चलन के, अज्ञान के झण्डे हुये॥

३४—वर्तमानकी माता

(२२८)

दस वर्ष बीते ब्याह को, अब तक न बेटा, पा सकी।
वह कौन सी औषधि रही, जिसको नही मैं खा सकी॥
मंदिर गयी, मस्जिद गयी, 'जंतर' लिया, 'मंतर' लिया।
सब कुछ किया' तब भाग्य ने, इस गोद मे बेटा दिया॥

३५—वर्तमान के पिता

(२२९)

हे पुत्र ! संस्कृत छोड़दो, दिन-रात अंग्रेजी पढ़ो।
फिर नौकरी के ताड़ पर, कस कर कमर जल्दी चढ़ो॥
लाओ कमा दो-चार-दस, रुपया, हमारा काम हो।
पाला इसी से है तुम्हें, तब 'पुत्र' तेरा नाम हो॥

३६—वर्तमान के गुरु

(२३०)

सेवा हमारी सब करो, चाहे जभी, देना सभी।
देखो! शिकायत भी हमारी, भूल मत करना कभी॥
घरवार की सेवा करो, नौकर तुम्हीं बेदाम के।
कलियुग! तुम्हारी जय रहे, गुरु लोग एक छदाम के॥

३७—वर्तमान के सखा

(२३१)

जब 'जेब' वाले खर्च से, तकलीफ पाया आपने।
तब 'मित्र' खोजा, बुद्धि भी, कैसी लड़ाई आपने॥
जब तक बने साथी रहे, खाली निरख कर चल दिये।
हा! मित्रता के नाम पर, पाखण्ड कितने रच लिये॥

३८—वर्तमान के मालिक

(२३२)

आना सुबह जब छः बजे, जाना जभी बारह बजें।
फिर दो बजे पर लौटना, जाना जभी ग्यारह बजे॥
ईमान से, दूकान का सब, काम करना चाहिये।
तनख्वाह देंगे पांच रुपया, सब्र रखना चाहिये॥

३६—वर्तमान के नौकर

(२३३)

आमद हुई कुछ और ही, करते जमा कुछ और ही।
मालिक सिखाते बात जो, उस पर न करते ग़ौर ही॥
हा! दासता स्वीकार की, पर नम्रता आई नही।
ईमानदारी बेच दी कर्त्तव्य निज करते कही॥

४०—वर्तमान के कथावाचक

(२३४)

कहते कथा श्री राम की, श्रीकृष्ण की, दिनरात हैं।
पर, अवगुणों की ताप से, झुलसे समूचे गात है॥
वे, व्यास गद्दी बैठ, गौवध पर बहुत ही रो रहे।
खुद 'बूट जूता' पहिन कर, वदनाम पण्डित हो रहे॥

४१—वर्तमान म्युनिसपैलिटी

(२३५)

फुरसत नही है कर चुकाने, कर लगाने में यहां।
देखी नही है सड़क रद्दी, हो रही कैसे कहां॥
है रोशनी होती कहां, दीपक कहां का 'गुल' पड़ा।
किस कुए मे मुर्गी गिरी, किस ताल का पानी सड़ा॥

(२३६)

जब दस बजे दोपहर के, सब लोग बाहर जा रहे।
मिहतर बहुत बिहतर बने, मोटर खटाखट ला रहे॥

पेशाव की मोटर नहीं, वह 'खास' मोटर जानिये।
वदवू उड़ी है चौक पर, इस चलन को पहिचानिये ॥

(२३७)

जब आप अपने शहर मे, यह इन्तजाम दिखा रहे।
तो फिर स्वराज्य, स्वराज्य का क्यो लोग पाठ सिखा रहे ॥
घर तक संभल सकता नहीं, मलमूत्र तक छूटा नहीं ।
सरकार रोती भाग्य को जो 'लाट' कर देती कहीं ॥

(२३८)

आलोचना पढ़कर कड़ी, मत शत्रु हमको मानिये।
आलोचना कारी सुजन को, मित्र असली जानिये ॥
आलोचना होगी नही, तब तक सुधार न हो सकै।
कड़वी दवा सेवन बिना, क्या रोग जड़से खो सकै ?

(२३९)

जो लोग अपनी भूल को, स्वीकार करते हर्ष से ।
वह सुखी होते अंत मे, अपने अमित उत्कर्ष से ॥
सब काम है भगवान का, नौकर सभी भगवान के।
मालिक निरखते हैं सभी, कर्तव्य हो, यह जान के ॥

(२४०)

जबतक उदय रविहो नही, तब तक सड़क सब साफ हो।
शायद न उठते आप भी, कहना हमारा माफ हो ॥
जब पथिक चलते मार्ग में, तब झाडुओ का काम हो।
उन राहगीरो के हृदय मे, आप यों वदनाम हो ॥

(२४१)

वे मूत्रमल की गाड़ियां, बाहर सड़क से--घूम के।
क्यो आप उस मदान मे, उनको नही भिजवा सके ॥
दस बजे बिलकुल चौक से, मल-मूत्र गाड़ी जा रही।
यह आप की तदवीर अपना, रूप है दिखला रही ॥

(२४२)

जो हैं मुहल्ले शहर के, उनकी गली गन्दी पड़ी।
मल-मूत्र से परिपूर्ण हैं, गलियां न संध्या तक झड़ी ॥
प्रत्येक घर को खबर दो, प्रत्येक जनका धर्म है।
निज टट्टियो मे राख डालै, प्रथम उनका कर्म है ॥

(२४३)

चौबीस घण्टे मध्य केवल, एकबार प्रभात मे।
मिहतर कमाते टट्टियां, आलस भरा सब गात मे ॥
यदि राख पड़ती सर्वदा, तो बू न घर मे भर सकै।
क्यो रोग नूतन उठ सकै, बालक न कोई मर सकै ॥

(२४४)

ख़ुद घूम-फिर कर रोशनी का काम देखो रात में।
कर्त्तव्य का ही ख्याल हो हर विषय में, हर बात मे ॥
सब की खबर लेते रहो! अपनी खबर देते रहो।
बस्ती सफाई से रहे, आशीष ही लेते रहो ॥

(२४५)

इस्कूल, म्युनिसपैलिटी के, जरा ज्यादा कीजिये।
अनिवार्य शिक्षा की प्रणाली, शीघ्र रचवा लीजिये ॥

दिल्ली शहरने कर दिया, अनिवार्य शिक्षाक्रम, अभी ।
अनुकरण वैसा, हिन्द वाले शहर कर सकते, सभी ॥

(२४६)

घर और घरवाला निरख कर, टैक्स लेना चाहिये ।
जो दीन हैं उनको सताकर, दुख न देना चाहिये ॥
कोई ' जगह ' नीलाम हो, तो हक्क हो देना उसे ।
कुछ अधिक धन के लोभ से, मत मार ही लेना उसे ॥

(२४७)

इक्के सड़े से चल रहे, गिरते मुसाफिर रोज ही ।
टट्टू, मलीदा हो गया, उस की नहीं है खोज ही ॥
बोझा लिये गाड़ी चलै, वह बोझ कितना है भरा ।
कीजे दया ! कीजे दया ! वह बैल बेचारा—मरा ॥

(२४८)

वे ' हेल्थ आफीसर ' कहां ? उन पर नजर रखिये सदा ।
सोते कहां रहते पड़े, यह खोज रखिये सर्वदा ॥
है शाक विकता सड़ा सा, आटा न असली बिक रहा ।
है दूध में पानी भरा, घी हो रहा कीचड़ महा ॥

(२४९)

अब तैल मिश्रित घी हुआ, हलवाइयों के काम मे ।
कितनी ' खटाई ' दीखती है, उस ' मिठाई ' नाम मे ॥
जो हैं ' हवाई डोकटर ' या ' ऊंट वैद्य ' समाज मे ।
पत्थर लगा दीजे बड़ा, उस रहजनी के काज मे ॥

(२५०)

लीजे समझ कर्त्तव्य, यह कहना हमारा आप को।
हैं चतुर खुद ही आप तो, काफी 'इशारा' आपको॥
सुनना बुराई चाहिये, करना भलाई चाहिये।
मतलब यही है, शहर मे—अच्छी सफाई चाहिये॥

४२—वर्तमान का डिस्ट्रिक्टबोर्ड

(२५१)

हैं दे दिये दो 'महकमे', सरकार ने, करके दया।
लेकिन, हमारा काम क्या, त्रुटिहीन है पाया गया॥
है प्रथम म्युनिसपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोरड दूसरा।
उसमे निरा कूड़ा भरा, इसमे निरा घूरा भरा॥

(२५२)

अत्यंत उत्तम 'महकमा'—यह बोर्ड' हाईकोर्ट है।
वह, दिव्य बच्चो के दिलो मे, दे रहा अति चोट है॥
हैं पुस्तके रद्दी—महा, 'बस्ता, —जलाने योग है।
सरकार ने अवसर दिया, उसका यही उपयोग है॥

(२५३)

जो मेम्बर घुसते वहां, यह धनिक होते हैं—सभी।
देखे जिन्होने हैं नही, विद्वान, कवि, लेखक, कभी॥
हे धनी! सब ले जाइये, शिक्षा, कृपाकर, छोड़ दो।
मा-भारती का हाथ कोमल, वज्र से मत, तोड़ दो॥

(२५४)

धन शक्ति द्वारा, कीर्ति हित, जो 'वोट' फिरते मांगते ।
यदि बुद्धि होती हृदय मे, निज हाथ तो न पसारते ।।
लेखक चुने हैं 'सड़े' से, लालच न जाने, कौन है ।
अब, देश क्रोधित हो रहा, समझो न उसको मौन है ।।

(२५५)

जिस 'लच्च' से सरकार ने, सम्मान 'डाक्टर' को दिया ।
उस भांति से 'अध्यापको' ने काम 'श्रद्धा मय' लिया ।।
क्यों बोर्ड 'तुम' लिखता उन्हे, 'वदमाश' क्यों कहता उन्हे ।
'गुरुपद' निरखते स्वप्न मे, तो ध्यान कुछ रहता उन्हें ॥

(२५६)

अध्यापकों को उँगलियो पर, नाच नचवाते रहो ।
उन वालको को विल्लियो का, पाठ पढ़वाते रहो ॥
अध्यापकों के शीस पर, निज चरण भी रखते रहो ।
अनिवार्य्य शिक्षा भी नहीं, मन की सदा करते रहो ।।

(२५७)

है बोर्ड भीतर 'फूट' वह, जो धन हमारे देश का ।
है बोर्ड मे भी 'ऐंठ' वह, जो मूल सारे क्लेश का ॥
इस 'बोर्ड' का सब पाप घुसता, वोटरों के शीश में ।
अब वोट दो, विद्वान को, यह भीख दो, वखसीस मे ॥

(२५८)

उस वोर्ड वाले मेम्बरो का, हाल कुछ सुन लीजिये ॥
यदि समझ मे आवे दवा, तो शीघ्र उनको दीजिये ।।

वे लोग चुनते सर्वदा, अनुरूप चेयरमैन हैं।
यो बोलती तूती सदा, केवल उड़ाते चैन हैं॥

(२५६)

था मासटर एक वीर, उत्तर देदिये उनको कड़े।
उसको निकालेंगे अभी, पीछे उसी के हैं पड़े॥
वह जो कि उनके मित्र, उसका एक रिश्तेदार है।
उसको दिला देंगे जगह, वह ठीक 'तावेदार' है॥

(२६०)

कोई जगह, स्कूल मे, सुन्दर सुने लड़के जभी।
सब काम छोड़ा, और पहुंचे 'मुआइना' करने--तभी॥
वश मास्टर को कर लिया, उस लोभ वाले कामने।
उस 'गुरू' ने 'माशूक' की, डाली लगादी सामने॥

(२६१)

अध्यापकों को भी सिखाया, नष्ट बच्चो को किया।
हे वोटरो ! तुमने समझ कर, वोट था किसको दिया॥
देखो सड़क वह बोर्ड वाली, किस कदर रद्दी हुई।
कुछ वृक्ष भी उपजे नहीं, तदबीर सब भद्दी हुई॥

(२६२)

जो हैं धनी, उनके लिये, तैयार सड़के हो सकें।
लेकिन जरूरी सड़क वाले लोग, विनती कर, थके॥
'रामाअनुग्रह' ने किया, उद्योग अपने ग्राम मे।
थैली न उनको दे सका, यों 'नहीं' पाई काम मे॥

(२६३)

श्रीमान् डिस्टिक बोर्ड ! हम अपमान कुछ करते नहीं।
हमको बुरा लगता बहुत, सुनते बुराई जब कहीं॥
निज दुर्गुणों की बात खुदही निरख सकते हम नहीं।
निज श्याम धब्बा, चन्द्रमा, खुद देख सकता है कहीं॥

(२६४)

जो न्याय अथवा सत्य हित, कवि ने कथन तीखा किया।
मस्तक झुका अपराध निज, निज शीस ऊपर सो लिया॥
विनती यही है आप से, मम भूल सर्व बिसार के।
कमजोरिया निज छोड़िये, सब देख भाल विचार के॥

(२६५)

माता-पिता हैं पुत्र को बस, जन्म देकर, पालते।
गुरु लोग ही नादान बच्चो मध्य जीवन डालते॥
अतएव, गुरुपद है बड़ा संसार सब श्रद्धा करै।
वह कौन है, जो विमल गुरुपद से नहीं मन में डरै॥

(२६६)

जो पुस्तकें उन बालकों के हाथ में हैं जारही।
वह बात कोई भी नई उनको नहीं सिखला रही॥
ब्रह्मचर्य्य की शिक्षा नहीं निज स्वास्थ्य की शिक्षा नहीं।
कर्तव्य माता-पिता-गुरु प्रति, सीखते हैं वे कहीं॥

(२६७)

अच्छे-बुरे नर-नारियों को चीन्ह सकते वे नहीं।
उत्साह-साहस शून्य हैं, पुरुषार्थ को समझा कहीं॥

विश्वास ईश्वर में नहीं, कृषि-कर्म छोटा जानते ।
व्यापार को छूते नहीं, बस नौकरी पहिचानते ॥

(२६८)

वाणी न उनकी शुद्ध है, भाषा ग़लत बकते फिरे ।
सहपाठियो से लड़ मरे, दंगा सदा घर मे करे ॥
उनके स्वाभावो मे तनिक अंतर न हमको दीखता ।
जाकर मदरसे मध्य, अवगुण पुत्र मेरा सीखता ॥

(२६९)

अतएव, पढ़ने, के लिये, साहित्य उनको दीजिये ।
उनको 'मनुज' कर दीजिये, आशीष सब की लीजिये ॥
साहित्य सुन्दर रच सकें, उन लेखको को जानिये ।
सम्मान उनका कीजिये, निज से बड़ा पहिचानिये ॥

(२७०)

सड़के सकल निज महकमे की दिव्य रचना चाहिये ।
उनको सफल सुन्दर सुवृक्षो से निखरना चाहिये ॥
सारे मदरसो तक सड़क का रासता बनवाइये ।
सारे मदरसो को निरखने ध्यान-पूर्वक जाइये ॥

(२७१)

हो ग्राम मे जो मदरसे, उनको इमारत दीजिये ।
लड़के पढ़ें निज चाव से, वह यत्न हरदम कीजिये ॥
विद्यारथी जो दीन हो, उनकी मदद भी कीजिये ।
मां-वाप दे लड़के नही, उपदेश उनको दीजिये ॥

(२७२)

छत जब मदरसे की बनै, तो टीन मत डलवाइये।
हो सकै तो पक्की बनै, छप्पर वरन् बनवाइये॥
जब ग्रीष्म-ऋतु आ जायगी, तब टीन वे तप जायंगे।
लड़के नहीं पढ़ पायंगे, बच्चे बहुत अकुलायंगे॥

(२७३)

लड़के न हिल-हिल कर पढ़ें, हिलना बहुत नुक़सान है।
होता कलेजा भी निबल, कमज़ोर होता प्रान है॥
विद्यारथी पढ़ते सदा ही, ज़ोर-ज़ोर पुकार के।
यह रीत पढ़ने की नहीं, कीजे सुधार विचार के॥

(२७४)

जो कुछ पढ़ें, सो करें भी, उद्योग ऐसा कीजिये।
उपदेश पर चलते रहें, उत्साह ऐसा दीजिये॥
मा-बाप ने सौंपा उन्हें, श्रीमान जी की गोद में।
निज पुत्र उनको जानिये, रक्षा करो आमोद में॥

तृतीय अध्याय

प्रथम परिच्छेद—नेतृत्व

द्वितीय परिच्छेद— वर्तमान गवर्नमेंट

तृतीय परिच्छेद — देशदेशान्तर वर्णन

चतुर्थ परिच्छेद— वर्तमान का बाजार

तृतीय अध्याय

पहला परिच्छेद

नेतृत्व

(२७५)

कुछ कार्य्य प्रतिक्षण विश्व मे, जारी रहें निज नेम से।
'नेतृत्व' उनमे एक है, निरखें अगर हम क्षेम से॥
नेतृत्व बिन हम बोलना तक, सीख सकते थे कभी ?
नेतृत्व ही से चल रहे व्यापार दुनियाँ के सभी॥

(२७६)

नेतृत्व का ही तार माता पिता गुरु में दीखता।
नेतृत्व व्यापक तत्व है, नेतृत्व सब जग सीखता॥
पर, ज्ञान बिन नेतृत्व की भी दुर्दशा संसार में।
नेतृत्व का भी मूल्य है निज निजस्थल व्यवहार में॥

(२७७)

नेतृत्व ले श्रीराम ने अभिमान का जीता किला।
कुछ दिन इसी संसार को था मार्ग शान्ती का मिला॥
अवतार से नेतृत्व था यह बात ही थी दूसरी।
वह नाम ही कुछ और था, वह हुई थी जादूगरी॥

(२७८)

नेतृत्व दुनियाँ को दिखाया 'परशुराम' स्वरूपने।
टोपी उतारी चरण सन्मुख थी न तब किस भूपने॥
संसार सब था एक, थे वे दूसरी तट खुद खड़े।
संसार भर से भिड़ गये, नेता बने थे वे बड़े॥

(२७९)

नेतृत्व दुनियां मे किया प्रह्लाद ने रणधीर हो।
सब विश्व के प्रतिकूल बालक आगया गम्भीर हो॥
देखा नहीं फिर अग्नि अथवा सिंधु का ही नीर हो।
नेता बना वह हृदय भीतर भक्ति बल से वीर हो॥

(२८०)

जब तक समय आता नहीं नेता प्रकट होता नही।
जगदीश की आज्ञा बिना कुछ काम हो सकता कही॥
मनके मुखी बनकर फजीता झेलना बेकार है।
बिन 'हुक्म' किसने विजय पाई मन मुखी की हार है॥

(२८१)

नेतृत्व के शुभ रूप जगमे तीन अति विख्यात हैं।
जो धर्ममय पुनि राजनीतिक पुनि समाजिक ज्ञात हैं।
दोनो प्रथम के कार्य होते ईश्वरी आदेश से।
नेतृत्व सामाजिक स्वयम् होता समय के क्लेश से॥

(२८२)

इस वर्तमान स्वरूप की स्थिति है विलक्षण दीखती।
नेतागिरी, नेतृत्व करना स्वयम् पुनि पुनि सीखती॥

कर्त्तव्य वाला लक्ष सबको दीख पड़ता है नहीं।
बिन ज्ञान, दुनियां की अवस्था दीख पड़ सकती कहीं॥

(२८३)

सद्‌गुरु बताते लक्ष जो नेतृत्व आगे के लिये।
हम लोग सुनते हैं वही निज कान मन वाणी दिये॥
कहते यही वे हैं हमे तन किसी का वैरी नहीं।
तन पंचभूत स्वरूप है हो शत्रुता उससे कहीं॥

(२८४)

मन भी न कोई शत्रु है वह तो स्वयम् लाचार है।
क्षणमे सकल का शत्रु है क्षणमे सकल का यार है॥
तन और मन वैरी नहीं यह फलसफी बतला रही।
बस, भिन्नतादि 'विचार' में ही एक मात्र दिखा रही॥

(२८५)

कोई प्रकट होगा कहीं मत एक कर देगा सभी।
मत एक होगा विश्व में सुख-शान्ति हो सकती तभी॥
मत एक करना भी असंभव ईश्वर को है नहीं।
जगदीश बिन नेतृत्व वाली सड़क खुल सकती कहीं॥

(२८६)

राजा नहीं है दुःख दाता, प्रजा भी दुखदा नहीं।
सबलोग मर्माहत खड़े, दोषी नहीं कोई कहीं॥
ज्यो, ज्ञान-प्रेम विनम्रता के साथ कोई आयगा।
त्यो सड़क एक अखण्ड दिखला प्रेम-घन बरसायगा॥

(२८७)

यदि क्रोध आता है किसी पर तो वही अज्ञान है।
अज्ञान ही है शत्रु, इतना जानना हो ज्ञान है॥
छाया हुआ अज्ञान है, गत रात आधी काल की।
अब ज्ञान रविका उदय है, उतरी दया गुरु याल की॥

(२८८)

तलवार लेकर एक नेता आयगा संसार में।
तलवार का उपयोग होगा दूसरा व्यवहार में॥
तलवार वह अज्ञान वैरी को मिटा देगी यहां।
वह प्रेम की तलवार नाचेगी जगत भीतर वहां॥

(२८९)

धीरज धरो, जगदीश प्रति अवलम्ब आशा का करो।
मन से सकल कुविचार वाली शत्रुता बिलकुल हरो॥
दोषी किसी को मत कहो, अपना सुधार बनाइये।
विनती करो जगदीश से, नेता अलख प्रकटाइये॥

(२९०)

नेतृत्व का भी तत्व प्रतिक्षण जागता संसार में।
नेतृत्व की है आवश्यकता अवशि पारावार में॥
सुन्दर भविष्यत समय मे शिवजी कृपा ऐसी करे।
वह अमर सारे विश्व की बाधा समूची ही हरे॥

(२९१)

तब तक सभी हिन्दू, मुसलमाँ और ईसाई-प्रजा।
अपने समाज-सुधार मे लग जायगी ही जा-बजा॥

अपना स्वभाव संभाल कर, अपराध मन के दूर हों।
पहले 'मनुष्य' कहाइये फिर आप भी मशहूर हों॥

(२६२)

घर-द्वार वाले लोग ही माने न कोई बात जो।
या आपको दिखला रही अज्ञान काली रात जो॥
तो फिर भटकते घूमते उपदेश किसको दे रहे।
संयम समान सुमित्र से छुट्टी बहुत क्यो ले रहे॥

(२६३)

सद्गुरु मिला कोई नहीं, तक़दीर यों विपरीत है।
दर्शन न पाया संत का, तदबीर सारी 'तीत' है॥
निज रूप को जाना नहीं, भगवान को माना नहीं।
नेता बने किस योग्यता से स्वयम् सो जाना नहीं॥

(२६४)

घुड़दौड़ तो है दूसरी, नेतागिरी है दूसरी।
है काम करना ही नहीं, है कीर्ति की जादूगरी॥
भीतर कभी आये नहीं, कुछ भी समझ पाये नहीं।
गुरु लोग के वह 'रूल' अपनी पीठ पर खाये नहीं॥

(२६५)

पंजाब के हैं एक नेता, नाम लेना व्यर्थ है।
व्यक्तित्वसे मतलब नहीं, बस काम से ही अर्थ है॥
वे कहैं--हिन्दू-मुसलमाँ मिल जायं तो क्यों हार हो।
अंग्रेज भारत छोड़दे, जीवन हमारा सार हो॥

(२९६)

उनको नही यह सूझता अंग्रेज सब का मीत है।
सत मुसलमान स्वभाव ऊपर आपकी वह प्रीत है॥
या तो मुसलमां और अंग्रेजो से लड़िये सामने।
या प्रेम 'तीनो' से करो, चाहा वही है राम ने॥

(२९७)

यह बात उनकी खोपड़ी मे आ न सकती है कभी।
वह राज्य सुखकी चासनी सूखी न जिह्वासे अभी॥
ले राज्य केवल कीर्तिवश सब नाश कर बैठे हुये।
फिर 'राज्य-राज्य' पुकारते खाते वही बासी पुए॥

(२९८)

आगे हजारो वर्ष है, अंग्रेज जाति प्रबंधिका।
अनुकूल काली लक्ष्मी अनुकूल सरस्वति चंद्रिका॥
भारत ! किसी के नामपर 'पट्टा' लिया था ईशसे।
पृथ्वी 'इजारे' से वरी रक्खी अभी बख़सीशसे॥

(२९९)

श्रीमालवी जी ही हमारे ठीक पाते लक्ष हैं।
सब विध नहीं तो बहुत कुछ वे सत्य के समकक्ष हैं॥
जो हो, नही होगा कभी फल द्रोह या अज्ञानका।
सर्वत्र ज्ञानोप्रेमका है आरडर भगवानका॥

(३००)

दस-बीस सालोका लिये अनुभव मचलते आप हैं।
यह सृष्टि लाखों युगों से है सो समझते आप हैं॥

किस नियम से चक्की चले, इसका न तृणवत् ध्यान है।
किस भांति कीली घूमती, उसका न मन को ज्ञान है॥

(३०१)

किस जगह पर वह ईश खुद बनकर विधाता राजते।
किस वेद के अनुसार सारे साज खुद ही साजते॥
किस भाव से अब हिन्द में यह तीन 'आदम' दीखते।
हम तीन सन्मुख आगये, पर, खाक बनना सीखते॥

(३०२)

वह शान मे अकड़े हुए, हम आपमें अटके हुए।
वे एक पुस्तक के लिये सब ओर ही भटके हुए॥
तीनों बुराई में भरे, तीनो करो जंजीर है।
क्रोधित लड़ें पशु तुल्य वे, बिलकुल ग़लत सदवीर है॥

(३०३)

जब तक न हम सब सभ्य हो, सीखे न सच्ची नम्रता।
जब तक न प्रकटे प्रेम निर्मल चन्द्ररूप सुभद्रता॥
जबतक नहीं निज ज्ञान हो, जबतक न जग का भान हो।
तबतक न 'नेतागिरी' पर अब किसी का भी ध्यान हो॥

(३०४)

नेता बनें खुद आप अपने दुखद मनके हर घड़ी।
हर वक्त मन के सामने हो बुद्धि हाज़िर ले छड़ी॥
पुनि, खोज सद्गुरुके चरण मतिकी सुगति कर लीजिये।
नेतृत्व घरमे कर प्रथम, बाहर क़दम फिर दीजिये॥

(३०५)

योगी नहीं जो लोग हैं, साधू नहीं जो लोग हैं।
नेता नहीं वे बनसके, वे भोगते दुखभोग है।
लखकर समूची गड़बड़ी श्रीमान लोगो की बड़ी।
नेतृत्वकारी लाग नीरव हो रहे हैं इस घड़ी॥

(३०६)

जो धारमिक नेतृत्व भीतर विजय पा सकता नहीं।
वह राजनीतकक्षेत्र भीतर शान्ति ला सकता नहीं॥
जो राजनैतिक क्षेत्र में पाकर सफलता राजता।
वह ही समाजिक भूतलीला को पलक मे माजता॥

(३०७)

नेतागिरी का हाल हमने ठीक बतलाया नहीं।
इस बर्तमान महान गड़बड़-अर्थ जतलाया नही॥
सो सुनो, केवल ख़र्चे हित सब लोग ची ची कर रहे।
नेता, अधिकतर जेब पापिन के कदम पर मर रहे॥

(३०८)

प्रत्येक जनको, लाख रुपया हाथ मे रख दीजिये।
नेतागिरी के प्रश्न पर फिर राय उनकी लीजिये॥
हँसकर कहेंगे वह यही—सब ठीक था, सब ठीक है।
गाड़ी स्वयम् जाती उधर जैसी गयी थी लीक है॥

(३०९)

यह देखिये नेतागिरी कितनी विकट छलना भरी।
नेतागरी यह है नहीं इसको कहो जादूगरी॥

धन और कामिनि, कीर्तिवश नेता हुए ? पत्थर हुए।
ये, स्वार्थ अथवा जेवलीला ने पकाये हैं पुए॥

(३१०)

बैठो भवन निज और हरिका नाम लीजे नेम से।
प्रत्येक जन राजा नहीं, होता सुनो अब प्रेम से॥
प्रत्येक जन नेता नहीं होता कभी संसार मे।
नेतृत्व काम फक़ीर का इस सृष्टि के व्यापार में॥

(३११)

जो हृदय मे सब जीव को निज रूप लखता ज्ञान से।
सब की भलाई और निज का त्याग लखता ध्यान से॥
जिस के करो मे तप भरा, मस्तक धरे हरि हाथ हैं।
कल्पान्त का अनुभव लिये जो संत जग के साथ हैं॥

(३१२)

थल में वही जल में वही जो वायु में व्यापक रहा।
आकाश-का-आकाश जो विद्वान् को ज्ञापक रहा॥
सब तत्व का महतत्व जो, जो सृष्टि का आधार है।
वह काम खुद ही कर रही, सोती न वह सरकार है॥

(३१३)

लेकिन मनुज का मन कभी जगदीश से मिलता नहीं।
मन घोर पत्थर हो गया निज जगह से हिलता नहीं॥
लखकर स्वभाव मरोर मन में, खूब रोता है घना।
'नर' भी बिचारो है तमाशा एक दुनियां मे बना॥

(३१४)

सुनता नही है बात, भीतर से बतावे, वे, उसे।
बहरा हुआ जो घूमता, उपदेश तो दीजे किसे॥
बाहर न हरि को खोजता जो खुले दर हैं संत मे।
उस संत पद के सामने, आना पड़ेगा अंत मे॥

(३१५)

हैं एक मत तो 'संत' हैं उनमें 'यथार्थ' विवेक है।
प्यारा परम जगदीश जी को, 'संत' पद भी एक है॥
जिसको न कोई प्रश्न है, उत्तर मिले भरपूर है।
वे 'संत' पृथ्वी पर रहे, पर राम से कब दूर हैं॥

(३१६)

नेतृत्व पर व्याख्यान निज अब बंद करना है हमे।
नाराज होते लोग सुनकर, बात करना है हमे॥
बस, एकता का काम हो, भय त्याग है करना हमे।
पाठक! तुम्हारे रूबरू निज शीश है धरना हमे॥

(३१७)

हम, बंधु मझले आपके, हम, काम करते आपका।
संसार भर में सर्वदा है, राज्य सब के बाप का॥
हम, करेंगे जो हुक्म होगा, आप सब के रूप का।
मन एक चौकीदार है, उस रूप सच्चे भूप का॥

(३१८)

मन की कभी मानो नही, मन-मध्य काल निवास है।
पावन सुविस्तृत बुद्धि हो—युग चार देखो पास है॥

जो है भला सो है भला, जो है बुरा सो है बुरा।
तलवार उस के सिर खड़ी, जो मारना चाहै छुरा॥

(३१६)

पाठक! हमारे नयन में, कुछ द्वैत की माया नहीं।
निज स्वार्थ अथवा नाम की, हृद्धाम में छाया नहीं॥
मम चित्त में कोई कलक का काम भी आया नहीं।
हुंकार वाली क़लम से 'हरिगीतिका' गाया नहीं॥

(३२०)

कवि, भक्त है भगवान का, भगवान जो मा रूप में।
बालक समान अजान है, कवि पड़ा कविता कूप में॥
भारी बहुत ही वृत्ति है, चीटी बनादी चाहना।
सब विधि कुशल की चाह है, बन भ्रात नेह निबाहना॥

दूसरा परिच्छेद

वर्तमान–बृटिश–गवर्नमेण्ट

१—कानून

(३२१)

कानून अथवा नीतियां ही, विश्व की आधार हैं।
उन नीतियों में सर्वदा, रक्षित सकल अधिकार हैं॥

डर कुछ नहीं भगवान का, क़ानून से डरना सदा।
क़ानून के अधिकार मे, सरकार भी है सर्वदा॥

(३२२)

क़ानून की रचना नहीं, अंगरेज़ लोगो से हुई।
वह, धर्मशास्त्र प्रमाण संयुत दैव योगो से हुई॥
थोड़े नियम, पाकर समय, घट बढ़ सके, मिट भी सकें।
क़ानून सारे ग़लत हैं, जो कहें सो, मिथ्या बकें॥

(३२३)

क़ानून के सब भक्त हो, क़ानून भीतर प्रान है।
क़ानून से ही जगत का, होता निरन्तर त्रान है॥
क़ानून को जो काटते, वे दण्ड पाने योग्य हैं।
क़ानून के दुशमन सदा ही, भोगते दुख भोग हैं॥

(३२४)

'रामा अनुग्रह' अब हमारे इस तरह के छन्द हों।
सरकार के नौकर सभी, क़ानून के पाबन्द हो॥
राजा प्रजा आदिक सभी, क़ानून के ज्ञाता रहे।
दुख भी सहे सुख भी सहे, कानून का मारग गहे॥

(२५३)

'हमने रचा क़ानून है' कोई अगर ऐसा कहे।
तो मुक़द्दमा देना चला, वह दण्ड अति भारी सहे॥
क़ानून का मालिक बनै, सो शत्रु है सम्राट का।
अभिमान का पुतला वही, उल्लू वही है काठ का॥

(३२६)

दिल को दुखाने के लिये, जो बात बोलै ताव से।
अपराध माना जायगा, वह शान्ति-रक्षा भाव से॥
आलोचना गर चाहिये, तो समझ भी दरकार है।
उत्तेजना से समय को, पहिचानना दुश्वार है॥

(३२७)

निज अवगुणों को भूल कर, हम, चाल पर की देखते।
इन को बुरा, उन को बुरा, निज को भला ही लेखते॥
जो हैं बुरे तो हम सभी, जो हैं भले तो हम सभी।
गुण और अवगुण नाचते, इस घट कभी उस घट कभी॥

(३२८)

हो वैर भाव विचार में, हो पक्षपात स्वजाति में।
मन स्वार्थ मे हो घूमता, हो प्राण केवल ख्याति में॥
इस भांति दुष्ट स्वभाव से, आलोचना होगी नहीं।
जो आंख मे पट्टी लगी, तो रासता दीखै कहीं॥

(३२९)

सब को निरखते द्वैत में, यो क्रोध बढ़ता ही गया।
सत्संग कुछ करते नहीं, यो बोध घटता ही गया॥
मन मे बहे जाते पड़े, सपना निरखते मोह का।
हुंकारते अभिमान में, है काम करते द्रोह का॥

(३३०)

कानून मे पाबन्द हो, राजा-प्रजा दोनो चलें।
सूखें नही, टूटे नहीं, दोनो सदा फूले-फले॥

यद्यपि अस्वाभाविक नहीं है, राज—सत्ता लोक में।
लेकिन, प्रजा निज कष्ट कारण, उसे समझै शोक में॥

(३३१)

क़ानून का मंशा नहीं, हुक्काम सब पहिचानते।
कुछ मानते, कुछ जानते, कुछ तानते कुछ छारते॥
जो मारते या तानते, उन को जगाना चाहिये।
भूली हुई सम्पत्ति अपनी, फिर बचाना चाहिये॥

(३३२)

पाठक! हमारे दुःख का, कारण प्रजा-राजा नहीं।
कोई किसी के कष्ट का, कारण कभी बनता नहीं॥
यह समय का ही चक्र है, जो आप उन पर डालते।
यह समय ही का रूप है, निज कष्ट जिनको मानते॥

(३३३)

राजा नहीं सुख में रहै, यह भेद वे जन जानते।
जो राज-पाट प्रबन्ध की, कठिनाइयां पहिचानते॥
राजा, हृदय की समझ से, सब भांति सुख सरसा रहा।
लेकिन—समय सब ओर से, है आग निज बरसा रहा॥

(३३४)

अवलोकिये, यह श्रीमती, विक्टोरिया का राज है।
सम्राट प्यारे, शाह पंचम, जार्ज के सिर ताज है॥
कानून रक्षक पारलीयामेण्ट करती काज है।
यह वर्तमान समाज राजा का दिखाता आज है॥

(३३५)

अब हम बृटिश के राज्य पर, निज दृष्टि डालेंगे यहां।
सच्ची क़लम से काम लेंगे, कभी देखेंगे जहां॥
सब को सजगता प्राप्त हो क़ानून का उद्धार हो।
कर्तव्य-रत सरकार हो, सुख-शान्ति-रत संसार हो॥

२–चौकीदार के प्रति

(३३६)

घनघोर काली रात में, सब गांव सोता है पड़ा।
कमली वदन पर डाल चौकीदार पहरे में खड़ा॥
चक्कर लगावै गांव का सब के घरो पर आंख हो।
बदमाश, चोरो से नहीं, दीवाल मे सूराख हो॥

(३३७)

क़ानून का मंशा यही, प्रत्येक चौकीदार को।
निज काम चौकस था दिखा देना उसे, सरकार को॥
सब रात सोता ही रहा, अब बात चोरी की कहे।
किस राह से चोरी हुई, जब चौकसी पर तुम रहे॥

(३३८)

वेतन अगर थोड़ा मिलै, तो काम भी थोड़ा दिया।
कर ही नही सकते उसे तो, काम ही था क्यो लिया॥
वादा किया जिस काम का, तनख्वाह जिसकी पा रहे।
ड्यूटी न क्यो दिखला रहे, क़ानून से पकड़ा रहे॥

३—ग्राम-मुखिया के प्रति

(३३६)

नर नारियों को जांचना सब का स्वभाव विलोकना।
अन्यायकारी कर्म अपने गांव के सब रोकना॥
कानून खुद भी जानना, सब को सिखाना चाव से।
चुगली नहीं करना कभी, निज स्वार्थ युक्त स्वभाव से॥

(३४०)

कानून का मंशा यही, प्रत्येक मुखिया के लिये।
लेकिन बहुत से लोग उलटा काम हैं जारी किये॥
कर मेल चौकीदार से, नक्शा जमाया शान का।
यह काम बेईमान का, या काम है ईमान का॥

४—पटवारी के प्रति

(३४१)

जो खेत जिसके नाम हो, लिखते रहो उस नाम से।
सब जायदाद स्वच्छ हो, पटवारियो के काम से॥
स्याहा सही लिखना सही, वह रोजनामच काम का।
कानून नूतन जानना ले, हुक्म निज हुक्काम का॥

(३४२)

कानून का मंशा यही, पटवारियो के हेत है।
लेकिन सभी के चित्त मे, होता नहीं वह चेत है॥
रोते हजारो है कृपक, पटवारियो के नाम को।
पटवारियो ने खा लिया है, ग्राम के आराम को॥

५—जिमींदार के प्रति

(३४३)

तालाब-कूप-तड़ाग की, रक्षा सदा करते रहो।
घूरे पड़े बाहर, सफाई की सदा सब से कहो॥
उपयुक्त कर लेना, बढ़ाना दूध या मट्ठा दही।
क़ानून का मंशा, जिमीदारों के हित मे है यही॥

(३४४)

कुछ ही चलें अनुकूल बाकी, कृषक के प्रतिकूल हैं।
लें व्याज, सेवा मुफ्त लें, वे लूटते, बन शूल हैं॥
गाली बकें जा द्वार पर, घर पर बुलाकर पीटते।
रख रूप काल कराल का, कर पकड़ पैर घसीटते॥

६—थानेदार के प्रति

(३४५)

बनकर ज़बर कर जेर पर को, नहीं अत्याचार हों।
थाना-पुलिस कर्तव्य-रत, होशियार चौकीदार हों।
चोरी-छिनाले-जुए-डाके, कपट छल सब बन्द हों।
मत धर्म आदिक नाम से, जारी न गेरे फन्द हों॥

(३४६)

क़ानून का मंशा यही है, पुलिस थानेदार से।
सुख-शान्ति-रक्षा के लिये, तैनात वे सरकार से॥
कुछ लोग थानेदार बन, वे भूल वेढब हो रहे।
क़ानून के आदेश को, संसार से ही खो रहे॥

(३४७)

वे बोलते इस भांति हैं, मानो किसी के ईश हैं।
चलते अकड़, कर शेर मानो मार डाले बीस हैं ॥
ले पक्ष एक रईस का, अन्याय दीनों पर करें।
निज को बनाया मन सुखी, अब और वे किससे डरें ॥

(३४८)

कानून, कोई प्रेम अथवा, पक्षपात न जानता।
कानून रिश्ता और कुल की, जाति भी कब मानता ॥
कानून है 'कर्तव्य निज' क़ानून से हैं नीतियां।
उन नीतियों से बन रही, संसार व्यापक रीतियां ॥

(३४९)

'सब इन्सपेक्टर' लोग जो, क़ानून के पाबन्द हों।
तो सब इलाके के तुरत, अभियोग खुद ही बन्द हों ॥
घूमें न मिलकर गांव मे, पंचायते जाचे नहीं।
सुख-शान्ति वाला कार्य क्या. खुद आप से होता नहीं ॥

(३५०)

लो काम कानिस्टेबलो से, प्रथम उनको जांच लो।
जो जो असत भाषण करै, उसको रगड़ कर मांज लो ॥
जालो मुक़द्मे जिमीदारो के, हृदय मे जांच लो।
पाखण्ड छल या कपट को, क़ानून द्वारा फांस लो ॥

(३५१)

बदमाश-ज्वारी-चोर पर-धन और परतिय-पातकी।
भागें इलाक़ा छोड़ जो सुख, शान्ति युग के घातकी ॥

जो मत-मतान्तर के लिये, विद्वेष फैलाने लगे।
भट का पथिक पहिचान कर, होना नहीं उस के सगे॥

(३५२)

कानून है माता-पिता, हम लोग सब सन्तान हैं।
लड़ते-झगड़ते द्वार पर, बच्चे बहुत नादान हैं॥
अज्ञान अथवा मोह से, दंगे मंचाते लोग हैं।
ललकारने या भय दिखा उपदेश देने योग है॥

७—खुफिया पुलिस-प्रति

(३५३)

विद्रोहकारी, जालिया, हत्यार डालो जेल मे।
कटक हटाओ द्रोह के, जो बनें घातक मेल मे॥
कानून के सब शत्रु अपने हृदय भीतर डर रहें।
कानून रक्षक सुख सहे, कानून भक्षक दुख सहे॥

(३५४)

कानून का मंसा हुआ, खुफिया पुलिस के प्रति यही।
अंधेर अपने काम मे यह पुलिस भी दिखला रही॥
दोषी उड़ाते मौज हैं, निरदोष पाते जेल हैं।
अनजान स्वार्थी और लोलुप लोग करते खेल है॥

८—पोस्ट आफिस

(३५५)

चिट्ठी हमारी ले रहे, चिट्ठी हमारी दे रहे।
कानून के अनुसार ड्यूटी पोस्ट आफिस ले रहे॥

कानुन मे पाबंद होकर प्रीति, सबकी पा रहे।
क़ानून की उपयोगिता संसार को दिखला रहे॥

९—अस्पताल

(३५६)

कब बदन जैसी अन्य कोई वस्तु जग में दीखती?
सब सृष्टि लेकर बदन ही तो सबक सारा सीखती॥
जब हम किसानो पर विपति पड़ती भयानक रोग की।
तब क़दर आती ध्यान में उस अस्पताल-सुयोग की॥

१०—समय का उपयोग

(३५७)

प्रत्येक क्षण रहते उपस्थित सूर्य्य भी इस राज में।
प्रत्येक क्षण वह रेलवे चलती जगत के काज मे॥
प्रत्येक क्षण मुस्तैद रहती पुलिस पहरे में खड़ी।
प्रत्येक क्षण के काम तीनो हो रहे है हर घड़ी॥

११—सरकारी स्कूल

(३५८)

सरकारने जारी किये इस्कूल सारे देश में।
इस दीन भारतवर्ष के वे हैं सहायक क्लेश में॥
शिक्षा समय की प्राप्त कर, हम नौकरी पाते बड़ी।
जो घोर कुसमय मे हुई जीवन सहायक सी छड़ी॥

(३५९)

हिन्दी पढ़ो, उर्दू पढ़ो, इंगिलिश पढ़ो, अरबी पढ़ो।
या संसकृत का पठन कर ससार में आगे बढ़ो।
सारे विषय के मदरसे खोले गये हैं चाव से।
सरकार अपनी समझ से शिक्षा दिलावे भाव से॥

(३६०)

इस्कूल मे 'स्काउटिंग' की रीति जारी हो रही।
लड़के 'स्वयम्' सेवक' बने सेवा जगत की हो रही॥
इस्कूल मे ब्रह्मचर्य रक्षक तीव्र शिक्षा चाहिये।
इस्कूल में निज स्वास्थ्य रक्षक रीति भी सिखलाइये॥

१२—तहसीलदार के प्रति

(३६१)

प्रति जिले भीतर कई तहसीले खुलीं सरकार से।
कानून मे रक्खे प्रजा—जिमींदार को व्यवहार से॥
तहसीलदारो के लिये क़ानून का मंशा यही।
देहात भीतर सभ्यता का चलन हो जिससे सही॥

(३६२)

जिमदार के व्यवहार ऊपर लक्ष रखना ठीक से।
सारी प्रजा को ले चलो क़ानून वाली लीक से॥
सुन्दर सफाई ग्राम भीतर सर्वदा ही चाहिये।
तहसीलदारी आप निज क़ानून की दिखलाइये॥

(३६३)

देहात के नेता बनो, रक्षक सदैव किसान के।
बन मित्र नम्र स्वभाव के दुश्मन बनो अभिमान के॥
रखना खजाने पर नजर, रिश्वत न कोई ले सके।
नौकर न कोई भी कभी क़ानून को दुख दे सके॥

(३६४)

केवल गवाहो पर नही अभियोग—दारमदार हो।
कारण समझिये आप खुद इन्साफ पर तैयार हो॥
जब जालसाजी देखना तो होश कर देना सही।
तहसीलदारो के लिये, क़ानून का मंशा यही॥

(३६५)

जब गांव में ताऊन हैज़ा आदिका अति कोप हो।
तब तो नही देहात मे सुन्दर सफ़ाई लोप हो।
उस समय करुणा-वीर हो, वात्सल्यता का ख्याल हो।
हम दीन-हीन किसान जन के लिए चित्त कृपाल हो॥

(३६६)

प्राचीन गिरते कूप हैं, उनका पुनः उत्थान हो।
उन कुओके बिन कृषक का किस भांति से कल्याण हो॥
जो अधिक बोझा लादते, उनकी बढ़ा दीजे सजा।
रखिये कृपा उस बैल पर, जो मूक है, पर है प्रजा॥

(३६७)

सारे इलाक़े के मदरसो पर दया रखते रहो।
अच्छे-बुरे अध्यापको का चलन भी लखते रहो॥

सारे इलाके के अनाथों और अन्धों के लिये ।
तदबीर कोई कीजिये, जो हो सके अपने किये ॥

१३--कलेक्टर के प्रति

(३६८)

हर एक डिवीजन में अनेकों जिले होते हैं यहां ।
उसके प्रबन्ध-विधान को, रहते कलेक्टर हैं वहां ॥
प्रति कलक्टर के वासते, कानून का मंशा यही ।
सारे जिले की चाल हो, कानून के द्वारा सही ॥

(३६९)

तहसीलदारों का निरीक्षण कीजिये उत्साह से ।
उन को सिखाओ मर्म वे भूले न भटकें राह से ॥
उनकी हुकूमत देखना, उन के मुकद्मे जांचना ।
उनकी मिसिल के भाव को कानून द्वारा बांचना ॥

(३७०)

अपनी कचहरी मध्य सब के, चलन ऊपर ध्यान हो ।
रिश्वत वहां पर हो नहीं, कानून का ईमान हो ॥
जो लोग हो बागी उन्हें कसकर सड़क पर लाइये ।
कानून का सिक्का समूचे जिले में फैलाइये ॥

(३७१)

जो क्रूर थानेदार हों, उनके चलन पर दृष्टि हो ।
ईनाम की भी वृष्टि हो, कुछ दंड की भी सृष्टि हो ॥

जो हैं सिपाही काम के, उनसे कवायद लीजिये।
तरमीम भी कुछ कीजिये, तसदीक भी कुछ कीजिये॥

(३७२)

निज ध्यान म्यूनिसपैलटी की रीतियों पर, दीजिये।
सड़कें कहां रही रहें-यह निरख खुद ही लीजिये॥
उस ओर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में कानून की क्यो भूल हो।
रद्दी किताबें बंद हो, तालीम अब अनुकूल हो॥

(३७३)

रखिये अमीरों पर नजर, अध्यापकों पर ध्यान हो।
असली चलन का ख्याल हो, नकली चलन का ज्ञान हो॥
जो बन गये पाबंद नियमों में उन्हे सम्मान दो।
जो धूर्त हों, कानून के, उनको कठिन अपमान दो॥

(३७४)

अज्ञान या अभिमान या निज शान या निज स्वार्थ या।
जातीयता का पक्ष या कोई बुरा मारग नया॥
या जाल सिक्के आदि का, यह सब मिटाते जाइये।
निष्पक्ष हो, कानून से सुख-शान्ति सुन्दर लाइये॥

१४—कमिश्नरके प्रति

(३७५)

प्रत्येक सूबेमे कमिश्नरियां कई होती यहाँ।
प्रति कमश्नरी में ज़िले कितने ही बनाये हैं वहाँ॥

जैसे, जिला का काम करते हैं कलक्टर, जानिये।
वेसे, कमिश्नर काम करते कमश्नरी का मानिये॥

(३७६)

साहब ! अनेकों जिलों पर शोभित कमिश्नर आप हैं।
होते बहुत कम जा रहे छल-छन्द के उत्पात हैं॥
कानून के अनुराग में हम लोग आते हैं चले।
कानून की आराधना में दीखते हैं हम भले॥

(३७७)

जो लोग बकवादी बने, अज्ञानवश बकते फिरें।
लज्जा न जिनको शेष है जो दंड से थोड़ा डरें॥
वे अपढ़ लोगों मे बगावत का सिखाते पाठ हैं।
अपना उलटते और परका भी उलटते ठाट हैं॥

(३७८)

सिद्धान्त के प्रतिकूल जिनकी चाल देखी जा रही।
उन पर नहीं सरकार की कोई क्षमा दिखला रही॥
जिन जिन रईसों में भरा उपहास, हास-विलास हो।
उनको न क्यो सरकार का अत्यन्त हार्दिक त्रास हो॥

(३७९)

निज भेष-भूषा बदलकर खुद घूमिये देहात में।
घूमो कहीं पर दिवस में, घूमो कहीं पर रात में॥
दुख की समूची जांच हो, सुख-शान्ति के खोजी बने।
करते फकीरी घूमिये, फल-फूलके भोजी बने॥

(३८०)

सब चिंतवन को त्यागकर केवल कृषक को प्रेम दो।
कृषिकर्म को जो जानते, उनको मदद से क्षेम दो॥
जो हैं अहिंसक लाभप्रद, उनको सदा रक्षा करो।
संताप दीन-मलीन जन का, आप अब दिल से हरो॥

१५—गवर्नरके प्रति

(३८१)

इस बृहत् भारतवर्ष मे, सूबे अनेको राजते।
प्रत्येक सूबे पर गवर्नर एक-एक विराजते॥
कौंसिल कि पंचायत लिये, शासन चलाते आप हैं।
साहब गवरनर मेटते, विद्रोह के सन्ताप हैं॥

(३८२)

वे जानते हैं राज-द्रोही व्यक्ति को पहिचानना।
सीखा बखूबी मित्रकी सच्ची कदर को मानना॥
दिन-रात मनमे सोचते, विद्रोह कैसे जायगा।
किस लक्ष से सम्राट् का झण्डा अचल फहरायगा॥

(३८३)

जिस दिन सुशिक्षित कौनसिल, बन जाय भारतवर्ष मे।
अपकर्ष मिट ही जायंगे, शासन बढ़ेगा हर्ष में॥
शासन बनै त्रुटि हीन तब, तब ही कृषक-कल्यान हो।
कृषि की उपज बढ़ जायगी, इस राज्यका तब मान हो॥

(३८४)

प्रत्येक हिन्दू-नृपति अपने यहां 'ऋषि' रखते रहे।
उनको सखा-गुरु मानकर सत्कार भी करते रहे॥
ले राय उनकी, कर्मकर विख्यात होते थे यहां।
ऋषि, मुनि, द्विजों की दया से पातक बने रहते कहां॥

(३८५)

जिस लार्ड के दरबार में, विद्वान अनुरागी नहीं।
अभिमान के घातक नहीं, सर्वस्व के त्यागी नहीं॥
अधिकार-वैरागी नहीं, सब जाति के प्रेमी नहीं।
जगदीश के बेटे नहीं, कनून के नेमी नहीं।

(३८६)

जिस लार्ड के दरबार में, त्यागी नहीं, ऋषि-मुनि नहीं।
विज्ञानवेत्ता, ज्ञानरत योगीश की स्वर-ध्वनि नहीं॥
पंडित नहीं, कविवर नहीं, बलवान, भावुक नर नहीं।
उस लार्डके मनसे कभी भी दूर होगा डर नहीं॥

(३८७)

योगीश कितने ही वृटिश के राज्य-रक्षक दीखते।
उपदेश उनका श्रवण कर हमलोग लिखना सीखते॥
उनके सुदर्शन से सदा सुख-शान्ति उन्नति पायगी।
सरकार! यदि हम सच कहें तो कमी यों बन जायगी॥

१६—गवर्नर-जेनरल साहब

(३८८)

श्रीमान तो सब जानते, कुछ भी छिपा रक्खा नहीं।
वह स्वाद कोई है नहीं, जो आपने चक्खा नहीं॥
'मूरत' सकल पहिचानते 'सूरत' सकल की जानते।
है प्रेम सबपर आपका, कर्तव्य निज पहिचानते॥

(३८९)

अब लार्ड 'अरविन' आप भेजे हैं गये जिस लक्ष से।
आशा यही पावें सफलता आप अपने पक्ष से॥
कुछ कार्य्य ऐसे कीजिए, परितृप्त हिन्दुस्तान हो।
मत-भिन्नता का नाश हो उत्थान हो कल्याण हो॥

(३९०)

सम्राटने, विश्वास कर, निज शक्ति देकर हाथ में।
अपना हृदय भेजा यहां, साहब तुम्हारे साथ में॥
वे चाहते हैं न्याय भी, वे चाहते हैं शान्ति भी।
वे चाहते हैं एक अद्भुत "प्रेमवाली क्रान्ति" भी॥

(३९१)

बस--प्रथम इसकी खोज हो, है मूल अवनति का कहां।
वह 'भूल' बैठी है कहां; जो नाश करती है यहां॥
जिस घोर तम 'अज्ञान' द्वारा, प्रेम जमता ही नहीं।
खोजो उसे ! खोजो उसे ! छिप कर पड़ा होगा कहीं॥

(३६२)

चिन्ता न कीजै राज की, है राज्यकी चिन्ता उसे।
लखकर फकीरी, ईश ने, यह राज्य सौंपा है जिसे॥
उनको निहारो सब जगह, साहब उन्हें क्यों तज दिया।
अवतार जिसने था लिया, शुभ नाम-श्रीविक्टोरिया॥

(३६३)

इस विश्वरूपी नाट्यशालाकी 'प्रबन्धक' 'पार्ट' मे।
हम 'ऐकटर' हैं रहचुके, अनुभव हमें उस 'आर्ट' में॥
अब आप हैं वह ऐकटर'-साहब हृदय में सोच लो।
अपनी सभी कमजोरियों को मार-पीट दबोच लो॥

(३६४)

ईश्वर, जिसे जितने दिनों के लिये देता राज है।
उतने दिनों के लिये, उसकी शक्ति, करती काज है॥
कुछ दिन हमारे साथ थी, अब आपके है साथ मे।
देखी गयी अबतक नहीं, वह, एक ही के हाथ में॥

(३६५)

कर्तव्य की ही भ्रांति से, दुख-दाह की संध्या हुई।
हत्या किसानों की नहीं, कानून की हत्या हुई॥
हत्या नहीं है 'गाय' की सचमुच 'दया' का खून है।
दो-दो फकीर विनाश है!! गहरा बना मजमून है॥

(३६६)

तो भी बहुत बिगड़ा नहीं, सबको क्षमा ईश्वर करे।
ईश्वर उसे करदे क्षमा, जो हृदय से सचमुच डरे॥

उस वृटिश शासन मध्य छाई क्रान्ति भारी क्यों अहो।
जिस चक्रवर्ती राज्य मे, रवि अस्त ही होता न हो॥

(३९७)

यह राज्य सब जगदीश का, सब लोग करते चाकरी।
विश्वात्मा की शक्ति व्यापक हो रही क्षमता भरी॥
धरणी उसी की और धन की राशि भी उसकी भरी।
हम लोग सब बन्दे बने करते यहां मैनेजरी॥

(३९८)

सत और तम, रज रूप हिन्दू, मुसलमाँ, ईसाइ हैं।
तीनों अनादि अनंत हैं, तीनों स्वभाविक भाइ हैं॥
तीनों सुधारें हृदय निज, तीनो रहे निज ध्यान मे।
कोई नहीं मिट सकेगा, कुछ है नहीं उस 'शान' में॥

(३९९)

श्रीमान 'अरविन' नाम 'अर-विन' प्रेम रँग बरसाइये।
सच्चे सुजान फकीर लोगों की मदद भी पाइये।
कृषिकर्म में जीवन भरो, रक्षा करो गौवंश की।
रक्षा करो! रक्षा करो! मैनेजरी के अंशकी॥

(४००)

जब आप अपने को स्वयम् कहते 'कृषक' आनन्द से।
जब आप कृषकों को छुड़ाना चाहते दुखद्वन्द से॥
जब आप खुद छोटे बने, सबकी दुआ हैं मांगते।
गौवंश की सुधि आप फिर, किस रीति से हैं त्यागते।

(४०१)

यह देश भारतवर्ष कृषि का देश अति विख्यात है।
कृषिकर्म का यह धाम है, गौवंश वाला प्रान्त है॥
गौवंश के बिन कृषि नहीं, कृषि के बिना गोधन नहीं।
ज्यो तन विहीन न प्राण है, ज्यों प्राणके बिन तन नहीं॥

(४०२)

हम लोग चाकर आपके, इस प्रजा के भी दास हैं।
हम हैं फकीरी पन्थ में, हम बने प्रेमाभास हैं॥
हम स्वार्थ निज चाहें नहीं, परमार्थ में विश्वास है।
उस ज्ञान-प्रेम-विनम्रता, के विपिन मे आवास है॥

(४०३)

इस विश्व रूपी महा, जंगल मध्य रहते हम पड़े।
सब जीव के ही सामने, कर जोड़ हो सकते खड़े॥
हम आज तक अज्ञान ही से, लड़े यदि जगमें लड़े।
हम द्वार पर यदि हैं अड़े, तो प्रेम के द्वारे—अड़े॥

(४०४)

इस, यज्ञ द्वारा पाप सारे विश्व का मारण करे।
सर्वत्र 'ज्ञानोप्रेम' सम्मत शब्द उच्चारण करे॥
वह क्लेशकारी काल जो, अज्ञान, सौ वारण करे।
सबकी कसम, सबको हृदय में, सखावत् धारण करे॥

(४०५)

श्रीलाट साहब का बड़ा दरबार है संसार में।
कोई छिपा पर्दा नहीं जिनके सफल व्यवहार में॥

जय शुद्ध ज्ञान समाज की, जय हो प्रजा-आनन्द की।
जय पाठकों की हो सदा, जय गीतका के छन्द की॥

१७—वर्तमान स्टेट सेक्रेटरी

(४०६)

श्रीमान् भारत मन्त्री को विज्ञात सारे तंत्र हो।
देखे सुने समझे हुए इस हिन्द के सब यंत्र हो॥
सरकार को निज राय दे, उपकार सबका कीजिये।
फिर जाचिये-फिर देखिये कानून सब लख लीजिये॥

(४०७)

जब तक किसानों के हृदय में प्रेम सच्चा हो नहीं।
साफल्यता तब तक नहीं, सुख शान्ति होसकती कहीं॥
सब ओर अब मत देखिये, कृषि कर्म को अब लोकिये।
उसको मदद दीजे तुरत, व्यय अन्य कुछ कुछ रोकिये॥

(४०८)

कोई कृषक रखता नहीं, दिल मे बग़ावत तर्कना।
तो भी पुलिस करती नहीं, उस दीन पर निज हित घना॥
वे दे रहे हमको सभी, भूखे दिवस निज काटते।
बनते सहायक हम नहीं, केवल उन्हीं को डाटते॥

१८—वर्तमान पार्ल्यामेंट

(४०९)

सब काम पार्ल्यामेंट के कर में दिया सम्राट ने।
बलमय व्यवस्था व्याप्त की है, राज-पाट विराट ने॥

प्रस्ताव द्वारा पास हो सकती सभी हित कामना।
अधिकार पार्ल्यामेंट के कर मध्य शोभित है घना॥

(४१०)

कानून जारी हों वहीं से, प्रेरणा के लक्ष से॥
सुख--शान्ति--ज्ञान--विनम्रता--इन्साफ--समयिक पक्ष से॥
वह 'बादशाहत' रूप पंचायत बनी दरबार में।
सर्वत्र उत्तरदायि उसके हाथ है, व्यवहार में॥

(४११)

लेकिन न पाल्यामेंट भीतर सिर्फ इंगलिस्तान हो।
उस पार्ल्यमेंट समाज भीतर क्यों न हिन्दुस्तान हो॥
अज्ञान हिन्दुस्तान है, यह जानना, अन्याय है।
यह ठीक है निज फूट से वह हो रहा निरुपाय है॥

(४१२)

अनिवार्य शिक्षा दीजिए इस दीन भारतवर्ष को।
अनिवार्य्य सैनिक कीजिए इस हीन भारतवर्ष को॥
कानून अब कुछ दीजिए, जो कार्य असली कर सकें।
जीवन समुज्वल ज्योति हिन्दू लोग निज में भर सकें॥

(४१३)

कानून ऐसा एक हो, जो बाल व्याह विनाश हो।
विकराल काल स्वरूप बालविवाह सत्यानाश हो॥
उपदेश से या लेख से या सभा से, फल तुच्छ हो।
कानून से ही देश यह, उस रीति को तज, स्वच्छ हो॥

(४१४]

कानून ऐसा एक हो, जो वृद्ध-ब्याह न हो सके।
कानून से ही सहज में यह देश वह दुख खो सके॥
कानून ऐसा एक हो, जिस से दहेज—विनाश हो।
कानून ऐसे रचो जिससे नीचता को त्रास हो॥

(४१५)

कानून रचकर एक खुद गोवंश की रक्षा करो।
कानून द्वारा जिर्मींदारो के लिए शिक्षा करो॥
वह भूमि-गोचर छोड़ दें, खुद आप जंगल छोड़ दें।
गोबध अमंगल धाम है, इस सूत्र को अब तोड़ दें॥

(४१६)

अब एकता का रासता कुछ दीजिए संसार को।
अनुकूल लख कर समय उन्नत कीजिए व्यवहार को॥
इतिहास में निज नाम को, अबतो सुनहला कीजिए।
विश्राम युत विश्वास भारतवर्ष को अब दीजिए॥

१९—वर्तमान सम्राट

(४१७)

सम्राट-पद श्रीमान का अत्यन्त आदर योग है।
श्रीमान ही की भृकुटि भीतर प्रजा-रंजन भोग है॥
शुभचिन्तवन सम्राट का हमको, महा संयोग है।
होता सदा श्रीमान से, इस देश हित, उद्योग है॥

(४१८)

सम्राट के शुभ नाम मे आशा हमारी है भरी ।
सम्राट की ही है सकल संसार यह जादूगरी ॥
अज्ञान सारे शत्रुओं का नाश करते हो सदा ।
यशपूर्ण विमला प्रीति का ही ध्यान रखते सर्वदा ॥

(४१९)

सम्राट पद में पक्षपात विनाश का अंकुर नहीं ।
सम्राट प्रति विश्वास रखने से जगत में डर नही ॥
सम्राट से निज न्याय आवेदन यही इस देश का ।
अति शीघ्रता से दूर हो, घन घोर सारे क्लेश का ॥

तीसरा परिच्छेद

देश देशांतर-वर्णन

(४२०)

जितनी धरणि है सृष्टि की, संसार उसको मानिये ।
यूरोप, एशिया और अमरीका उसी मे जानिये ॥
संसार भर में नार-नर हैं, दो अरब अनुमान से ।
पशु और पक्षी की कभी गणना न हुई प्रमान से ॥

(४२१)

भूलोक या गोलार्द्ध दोनो को समझ संसार में ।
अवलोकिये अब सकल देशों को चलन-व्यवहार में ॥

सब जगह वाणी भिन्न, भाषा भिन्न रूपा राजती।
पर, भावकी नीरव छटा सब ओर एक विराजती॥

(४२२)

जिस भांति भारतवर्ष में अनरीतियों का साज है।
उस भांति सब भूलोक पर विपरीतियों की गाज है॥
यद्यपि नहीं हैं एकसी ही रीतियां सब देशमें।
अनरीतियो से किन्तु सबही दुखित रहते क्लेशमे॥

(४२३)

अंग्रेज दलकी नारियो में कभी घूंघट था नहीं।
लेकिन मुसल्मानो में हिन्दू जाति सा परदा वहीं॥
हिन्दू-मुसल्मां, लड़कियो को दे न परकी जाति में।
अंग्रेज की बेटी चली जाती है सारी ख्याति में॥

(४२४)

अंग्रेज दलमे व्याह होते स्वयम् अपने भाव से।
हम हिन्दुओ मे व्याह हो माता-पिता के चाव से॥
हिन्दू जलाते है मरे को और वे दफना रहे।
निज निज स्वभाव विचार से सुख-दुख सभी ने हैं सहे॥

(४२५)

अंग्रेज दलकी आदि भाषा नाम 'लैटिन' जानिये।
मुसलिम दलोंकी आदि भाषा नाम 'अरबी' मानिये॥
हिन्दूजनो की आदि भाषा 'संसकृत' देखो यही।
अब तो अनेको पुत्रियां, उन तीन की दिखला रहीं।

(४२६)

अंग्रेज रखते टोप, हिन्दू लोग साफे बांधते।
मुसमान तुर्की टोपियों से कार्य्य हैं निज साधते॥
वे 'वाइविल' के भक्त हैं, वे हैं 'कुरान' निवाजते।
हम लोग वैदिक धर्म ले, संसार मध्य विराजते॥

२०—फ्रांस

(४२७)

श्वेतांग दल रहता वहाँ, है प्रजातंत्र विराजता।
भाषा वहां की फ्रेंच है, फैशन नवीन निकालता॥
सड़कें वहाँ पर 'रबड़' की, कुछ सड़क 'शीशे' की वहां।
शौकीन पूरा फ्रांस है, उपमा मिलै उसकी कहां॥

(४२८)

धनवान—शिक्षित रहें पैरिस राजधानी नाम है।
थेटर वहां के अजब हैं, उनके निराले काम हैं॥
नर-नारियों ने व्याह पर हड़ताल बोली थी वहां।
सच बात है, उस व्याह सा बंधन परम दुखप्रद कहां॥

(४२९)

जिस मोह ममता के लिये सुख-शान्ति छूटी हाथ से।
वह मोह-ममता भी चली जायेगी क्या अब साथ से॥
हे फ्रांस! मानव के लिये सुख-शान्ति केवल प्रेम है।
वह प्रेम जिसके चारपायों के पलंग में—नेम है॥

(४३०)

मरदुमशुमारी फ्रांस की नर—नारि चार करोड़ हैं।
निज क्षेत्रफल के रूप से मदरासवाला जोड़ है॥
मदरास तो छविहीन है, वह तेज में बलवान है।
मदरास दीन गरीब है, वह फ्रांस तो श्रीमान है।

(४३१)

व्याहिक नियम हैं फ्रांस मे, इससे न कम मे व्याह हो।
ज्यादा उमर अधिकार में, कँारे रहो यदि चाह हो॥
पति योग्य, अष्टादस बरस हो पंचदश वाली बधू।
वह खर्च करके खूब कहलायेगी पतिशाली बधू॥

(४३२)

२१—रूस

इस हिन्दसा विस्तारवाला रूस भी भूगोल में।
अधिकार अपना पा लिया इसलिये भारी तोल में॥
चौदह करोड़ विशाल मानव-जाति है उस देश में।
अत्यन्त रेगिस्तान है, वह रूस मध्य प्रदेश में॥

(४३३)

जापान से लड़कर पराजय प्राप्त की थी रूस ने।
उस दिन समुन्नति की कसम मन मध्य ली थी रूस ने॥
बीसो कलह के बाद अब वह एक राष्ट्र स्वतंत्र है।
उस पर नहीं अब गैर का चल सकै कोई मंत्र है॥

(४३४)

२२—जापान

जापान भी है 'बौद्ध-हिन्दू' देश इस संसार मे।
सुप्रसिद्ध नेता एक है बाजार के व्यापार में॥
है एक सूबा हिन्दसा, पर, एकता में 'एक' है।
निज राष्ट्र रक्षा के लिये, अत्यन्त तीव्र विवेक है॥

(४३५)

है वौध मत छाया वहां, वे हैं उपासक बुद्धि के।
मन के मतो को त्याग वे संलग्न साधक शुद्धि के॥
जापान में भी राज्य होता, राज्यतंत्र प्रमान से।
मरदुमशुमारी पांच कोटि सुचार लाख विधान से॥

(४३६)

ज्वालामुखी पर्वत वहां पर, बहुत ही विकराल हैं।
वे फेकते चट्टान, पत्थर, लोह, चूना, राल हैं॥
भूकम्प भी आते बहुत जापान व्याकुल ही रहै।
निज भूमि की लख दुर्दशा, नित दुःख दावानल सहै॥

(४३७)

जापान मे ईसाइयो का धर्म बढ़ता जा रहा।
श्री बौद्ध का मत बिन सहायक नित्य गिरता जारहा॥
सच्चे सनातन धर्म के नेता वहां जाते नहीं।
आध्यात्मकी जाज्वल्यता उस ओर दर्शाते नही॥

(४३८)

२३--जर्मनी

निज युद्ध से जर्मन सकल संसार में विख्यात है।
इस हिन्द के प्रत्येक बच्चे को भी जर्मन ज्ञात है॥
'भूगोल का राजा' न जर्मन बन सका, कोशिश किया।
निज ज्ञानबल निज युक्तिबल अनुपम हमें दिखला दिया॥

(४३९)

'अज्ञान का विज्ञान' है जो वस्तु तत्व विधान का।
जर्मन लिया नम्बर प्रथम 'जड़वाद' मध्य प्रधान का॥
तोड़ा किला वेलजियम का, जो था अटूट स्वरूप ही।
वेलजियम जैसे शहर को छोड़ा बनाकर कूप ही॥

(४४०)

छः कोटि नव्बे लाख है, मरदुमशुमारी जर्मनी।
बंगाल के सदृश है ज्यादा नहीं भारी जर्मनी॥
बाईस यूनीवर्स्टियां जारी वहां पर हो रही।
था वहां सस्ता माल बनता और बिकता सब कहीं॥

(४४१)

कैसर वहां के थे नृपति, सो राज गद्दी छोड़ के।
अब एक टापू में रहे संग्राम से मुख मोड़ के॥
कैसर बहुत बूढ़े हुए थे किन्तु अब फिर युवक हैं।
बन कर युवक अब सीखते वे प्रेम वाला सबक हैं॥

(४४२)

वर हो अठारह वर्ष का, हो वधू चौदह वर्ष की।
इससे न कम मे व्याह हों आती न सायत हर्ष की॥
सब नागरिक हैं जर्मनी के स्वयम् सैनिक रूप से।
विद्या वहां पर छा रही, हैं वेद चार अनूप से॥

(४४३)

लेखक सुनो विद्वान जो, उस जर्मनी के ज्ञात हैं।
होकर व हर्डर और गेटी, मैक्समूलर ख्यात हैं॥
भाषा वहां पर 'जर्मनी' ईसाइयों की जाति है।
खुफिया पुलिस सर गरम जर्मन देश की विख्यात है॥

२४—चीन

(४४४)

वह चीन विस्तृत देश भी, है हिन्दुओं का देश ही।
हम हिन्दुओं का धर्म है हम हिन्दुओं सा वेश ही॥
चीनी वहां की मातृ-भाषा वे स्वभाविक वणिक हैं।
वे लोग भी हैं बौद्ध धर्मी, किन्तु साधक अधिक हैं॥

(४४५)

वह चीन भारी देश, चालिस कोटि नर आबाद हैं।
लेकिन अफीमी बहुत है, वे नशे से बरबाद हैं॥
मस्तक वहां के गोल, चपटी नाक चोटी नाग सी।
सिर पर लपेटे लोग अद्भुत एक लम्बी पाग सी॥

(४४६)

वह चीन है मम देश भारतवर्ष के अनुरूप ही।
अनुराग रखता हिन्द के प्रति चीन आज अनूप ही॥
हम लोग उनको बन्धु समझें तो बड़ा सा काम हो।
जब चीन पर निज प्रेम हो तो हिन्द का भी नाम हो॥

२५—अफ्रीका

(४४७)

इस देश भीतर जंगली, कुछ जातियां भी दीखतीं।
वे जातियां अब सभ्यता का, पाठ नूतन सीखती॥
वे लोग हिंसा-कर्म को अज्ञान वश छोड़ें नही।
शीतादि से आजाद जाड़े मध्य कुछ ओढ़ें नही॥

(४४८)

वह देश रेगिस्तान है, जंगल घने उस ओर हैं।
जंगल बड़े विस्तीर्ण हैं, मिलते न उनके छोर है॥
अब वहां ईसाई बसे, हिन्दू—मुसलमां भी बसे।
जंगल वहां के आज कल, कृषि-कार्य मे जाते कसे॥

(४४९)

उस देश वालो के लिये बहुधा मदरसे खुल रहे।
वे लोग पढ़ते और जड़ता छोड़ अब मिल जुल रहे॥
वह देश भारतवर्ष जैसा खूब विस्तृत देश है।
गोवंश रहता है बहुत, उन को न कोई क्लेश है॥

२६--संयुक्त राज्य अमेरिका

(४५०)

इस देश की मरदुमशुमारी पूर्णतः नौ कोट है।
भूगोल का इतिहास नक्शा पुस्तको में नोट है॥
श्वेतांग वासी हैं शताधिक और यूनिवरसीटियां।
बत्तीस कोटी हिन्द, पन्द्रह विश्वविद्यालय यहां॥

(४५१)

राजा वहां पर हैं नहीं, वह प्रजातंत्र मुकाम है।
बनता सभापति एक चुनती प्रजा जिसका नाम है॥
वह पांच सालो तक चलाकर काम घर जो बैठता।
तब दूसरा चुनते वही फिर राज-काज समेटता॥

(४५२)

झाड़ू लगाता सड़क पर वह भी यही दिल में लिये।
मैं राष्ट्रपति बन सकूंगा, यदि कार्य सब अच्छे किये॥
कोई किसी के सामने निज हाथ फैलाता नहीं।
कोई किसी पर लात, घूंसा, चपत बिठलाता नहीं॥

(४५३)

लखपती को कोई न पूछे, कौन है किस ओर है।
उस देश मध्य करोड़पतियों का न मिलता छोर है॥
सब लोग खुश रहते वहां उद्यम सभी नर कर रहे।
डरते किसी से भी नहीं, कानून से ही डर रहे॥

(४५४)

उस देशमें है नारियो की खूब तूती बोलती।
सब ओर टोली नारि की आजाद होकर डोलती॥
उस देश के नर लोग नारी जाति को सम्मान दें।
उन देवियों पर लोग अपनी जान दें, उत्थान दे॥

(४५५)

उस देश को अंग्रेज कहते 'मदर लैंड' स्वभाव से।
अर्थात—'माँका देश' कहते हैं उसे अति चाव से॥
संसार मे धन अर्द्ध है, है अर्द्ध धन उस धाम में।
उन्नति निवासी कर रहे, हर बात मे, हर काम में॥

(४५६)

एक कारखाना मोटरो का है वहां विस्तीर्ण सा।
दो तीन मीलो मध्य उसका कारयालय है बसा॥
प्रति मिनट की आमद उसे है त्रय सहस्र सदैव ही।
यह बात देखी आंख से कुछ लोग कहते हैं सही॥

(४५७)

उस देश के अखबार, लाखो ग्राहको के संग हैं।
उनके अगाड़ी हिन्द के, अखबार हुलिया तंग हैं॥
मिहतर पढ़े अखबार, ज्यादा बात कहनी व्यर्थ है।
विद्या वहां पर छा रही इस बात का यह अर्थ है॥

(४५८)

हज्जाम भी उस देशके बस बीस रुपया रोज ही।
लेते कमा निज काम से, करते न गाहक खोज ही॥

अब तो अमरिका प्रेत-विद्या तत्व में भरपूर है।
परलोक वाले लोक—लोकान्तर विषय में चूर है ॥

(४५६)

श्वेताग लोगो के लिये वह देश निज अभिमान है।
उस देश को ईसाइयो प्रति बहुत कुछ सन्मान है ॥
लाखों करोड़ों नोट बाइबिल के प्रचारों दे रहा।
ईसाइयत की तीव्र गति में मुख्य हिस्सा ले रहा ॥

२७—इंग्लैण्ड

(४६०)

इंग्लैण्ड की है राजधानी, नगर 'लण्डन' जानिये।
सम्राट पञ्चम जार्ज की गद्दी वहां—पहिचानिये ॥
मरदुमशुमारी लाख दस युत पूर्ण चार करोड़ है।
निज क्षेत्रफल के रूप से, बंगाल वाला जोड़ है ॥

(४६१)

युनिवर्सिटी हैं तो अठारह सर्व इंग्लिस्तान मे।
इंगलिश वहां की मातृभाषा, चलित हिन्दुस्तान में ॥
बस टेम्स विस्तृत है नदी लण्डन शहर के तट वही।
पुल तीन खण्ड प्रसिद्ध दुनियां मध्य अनुपम है वही ॥

२८—पहाड़

(४६२)

इस भांति से संसार भीतर देश और प्रदेश हैं।
पर्वत-समूहों के किनारो पर सजीले वेश हैं ॥

उन पर्वतों में सैकड़ों ही, बूटियां अनमोल हैं।
उन पर्वतों पर देखते हम थाह हीन खगोल हैं॥

(४६३)

उन पर्वतों को धातुओं का भवन कहना चाहिये।
चांदी वहीं, सोना वहीं, हीरा वहीं पर पाइये॥
उन पर्वतों में ठहरते हैं, जानवर उस देश के।
वह ही सहायक हो रहे, अवधूत योगी वेश के॥

२६—समुद्र

(४६४)

प्रति देश के चहुं ओर प्रायः सिन्धु गरजन कर रहा।
संसार की निस्सारता की सूचना है भर रहा॥
लेकिन जहाजों ने उसे इस बार संसारी किया।
सर्वत्र सागर-वक्ष पर विश्राम वोटों ने लिया॥

३०—संसार

(४६५)

इस भांति अनुपम साज से सजकर बना संसार है।
निज बुद्धि मन संयोग कृत प्रारब्ध का बाजार है॥
जैसा करो वैसा भरो, तकरार से तकरार है।
बदमाश को बदमाश है, दिलदार को दिलदार है॥

(४६६)

परमातमन! संसार के प्रति देश का कल्यान हो।
सर्वत्र भारतवर्ष का हुक्काम से सम्मान हो॥

संसार के प्रति खण्ड में, कृषि कर्म का उत्थान हो।
संसार के प्रति अंग में, गो-वंश का भी मान हो॥

(४६७)

संस्कृत सुभाषा 'विश्व-भाषा' रूप से व्यापक बनै।
विद्वेष निज निज जाति का, पर का नहीं घातक बनै॥
मानव वही जो मानवो का मूल्य मन मे जानता।
मानव वही जो जीव की सच्ची कदर पहिचानता॥

(४६८)

सर्वत्र सब संसार मे अब नारियो का मान हो।
शिक्षा मिलै सुख रूप जिस से वहिन का उत्थान हो॥
संसार मे ब्रह्मचर्य्य का, डंका बजै घनघोर हो।
सर्वत्र अनुपम न्याय निज अधिकार वाला शोर हो॥

(४६९)

जगदीश ! हे जगदम्ब ! अपनी सृष्टि पर दाया करो।
सुंदर सुमति मय हिन्द हो, ऐसी प्रबल माया करो॥
सर्वत्र मानव-प्रेम हो, हो नम्रता का ध्यान भी।
संसार में छा जाय हे ! भगवान सच्चा ज्ञान भी॥

चतुर्थ परिच्छेद

वर्तमान का बाजार
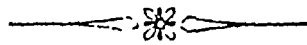
३०—वर्तमान-सड़क

(४७०)

बरसात वाले दिनो मे, जाना पड़े जो शहर में।
तो छटपटाना पड़ेगा, म्युनिसपिलैटी लहर में॥
यदि रात में चलना पड़ै, तो, डगमगाना चाहिये।
गड्ढे मिलेंगे, गिरोगे, दिन भर नहाना चाहिये॥

(४७१)

आती इधर से मूत्रगाड़ी, उधर मोटर आ रही।
अब इधर खाई समझिये, त्यो उधर खन्दक है सही॥
मुड़िये न दाईं ओर को नाली भयानक है वही।
हमसे पथिक कैसे चलें, चिन्ता सताती है यही॥

३१—मोटर गाड़ी

(४७२)

कैसी विकट 'भों-भों' हुई, आवाज राक्षस लोग की।
मुख-धूल, आंखो मे धुआं, दाता बनी है रोग की॥
मोटर निकालो मत शहर के, मध्य से, कैसे कहूँ।
पूँजीपतों की आंख से, दिन-रात मैं डरता रहूँ॥

(४७३)

दस मिनट तक उस धुएँ की, इस्टीम पीछे छा रही।
मोटर! तुम्हारे दर्श से मम देह सब दहला रही॥
रानी सड़क की आप हैं, है दिव्य तेरी सभ्यता।
जावे कहां हे श्रीमती? मोटर, तुम्ही देना बता॥

(४७४)

नर एक मोटर में चढ़ा, दस जीव मग मे रो रहे।
पैसे! तुम्हारी शक्ति से उत्पात बीसो हो रहे॥
धक्का लगा तो गिर पड़ो, वह ताड़का तन पर चढ़ी।
सारी कमर चौपट हुई, टूटी छड़ी, फूटी घड़ी॥

(४७५)

लाखो कृषक अधपेट रहकर, जिन्दगी को रो रहे।
पर, आप मोटर-व्यसन में, निज द्रव्य इतना खो रहे॥
इन मोटरों के मूल्य से, उद्योग करना था हमें।
निज देश के असहायको का, पेट भरना था हमे॥

३२—शहर का दृश्य

(४७६)

उत्तर दिशा से, आ रहा, इस्टीमरो का धुआं है।
दक्षिण दिशा मे जल रहा, मल-मूत्र वाला कुआं है॥
है पूर्व में इन्जन खड़ा, देता धुआं का ताप है।
पश्चिम दिशा मे 'मिल' बना ज्वालामुखी का बाप है॥

(४७७)

है धुआं मोटर का सड़क पर, धुआं घर 'तन्दूर' का।
है धुआं पत्थर—कोयला वाला जगत—मशहूर का॥
है भाड़से आता धुआं, हलवाइयों के घर धुआं।
तन मे धुआं, मन में धुआं, है बुद्धि के भीतर धुआं॥

(४७८)

सिगरेट लाखो का धुआं, हुक्के हजारो का धुआं।
पानी उबलता हौज़ मे उसका अलहदा है धुआं॥
बन्दूक मे भी है धुआं, है तोप मे भारी धुआं।
प्रति मिनिट के सेकेण्ड मे, है शहर मे जारी धुआं॥

(४७९)

यह धुआं पाँचो तत्व को प्रति क्षण, बिगाड़े जा रहा।
ताऊन, हैजा, युद्धज्वर को, दे निमंत्रण ला रहा॥
चश्मे लगा कर लोग प्रायः घूमते हैं शहर मे।
अब छटपटाते हैं शहर, इस धुएँ वाले जहर मे॥

(४८०)

यदि चाहते हो, इस धुएँ के ताप से, निस्तार हो।
तो हवन अथवा यज्ञ का, घर-घर सहर्ष प्रचार हो॥
जो चाहते हो शहर में, रोगादि दुख, आवे नहीं।
तो यज्ञ के उपकार को, यों आप बिसरावे नहीं॥

३३—शहर के गरीब

(४८१)

घर वहुत छोटा है मिला, उस गली वाली मोड़ में ।
दो टट्टियां उस मे बनीं, है खाज भारी कोढ़ मे ॥
वस टट्टियो के पास ही, बनती रसोई आप की ।
वह नौकरी है आप की, या प्रेरणा है—पाप की ॥

(४८२)

चूहे इधर बिल्ली उधर, मच्छड़ वहां, पिस्सू वहां ।
सुस्मरण शक्ति 'फरार' है, सब नाम लिख पाया कहां ॥
बाकी 'एनर्जी' अब नहीं, 'इन्जेकशन' दे दीजिये ।
अथवा 'कलोरोफार्म' दे, यह प्राण पापी लीजिये ॥

३४—शहर के अमीर

(४८३)

यद्यपि भवन भारी मिला, भाड़ा मगर ज्यादा लिया ।
निज नौकरों को टट्टियो के, तले मे ठहरा दिया ॥
उस ओर वाली कोठरी, घोड़े व टमटम को मिली ।
इस सामने के 'रूम' मे, रहती हमारी "फैमिली" ॥

३५—मिलों का आटा

(४८४)

चक्की चलाना स्वास्थ्य रक्षक, एक कसरत थी वड़ी ।
अब सभ्यता ने चक्कियो के, नाम्र नालिश की खड़ी ॥

मन्दाग्नि घर भर को हुई, बाजार का आटा लिया।
इस सभ्यता ने नारियो को, खूब ही चकमा दिया॥

३६—हवाई डाक्टर

(४८५)

बीसों हवाई डाकटर बाजार में बैठे हुये।
नर नारियो के बीच मे, बन कर 'चरक' पैठे हुये॥
रखते 'नवज' पर हाथ हैं, है ज्ञान नाड़ी का नहीं।
बीमार, मरते जा रहे, चिन्ता उन्हें इसकी कहीं॥

(४८६)

पचता अगर आटा नहीं, तो, डाकटर बुलवाइये।
नाड़ी नहीं दिखलाइये, आटा जरा पिसवाइये॥
पेचिश हुई तो जाइये, 'मगनेशिया' को खाइये।
दातून यदि मिलती नहीं, मंजन सहर्ष लगाइये॥

३७—शहर का घी

(४८७)

यदि गधे को भी दीजिये, तो रेंकता भागा फिरे।
लेकिन बिचारा मनुज रहकर शहर भीतर क्या करे॥
कितने पुराने आप हैं, सो, रंग है बतला रहा।
खुशबू नहीं है बला से, बदबू विराजी है महा॥

(४८८)

है भाव सात छटांक का, शीशी निकालो जेब से।
` ^ चर्वी मिली, मतलब नहीं उस ऐब से॥

पूड़ी बनै, हां श्राद्ध हो, डालो दवा में शफा हो।
व्यापारियो ! आशीश है, घी से बखूबी नफ़ा हो॥

(४८६)

हमने सुना, यूरोप से, घी, घास का आया हुआ।
उससे कचौड़ी भी बनै, खस्ता बनै मीठा पुआ॥
हलवाइयो ने है लिया, बनती जलेबी रोज ही।
हे घास के घृत ! धन्य हो, मिट्टी हुआ सारा दही॥

(४९०)

बतलाइये, अब हवन को भी, घी न गो का प्राप्त है।
वह शुद्ध घी मिलना कठिन, जिसमे न कुछ भी व्याप्त है॥
श्री कृष्ण-मंदिर के लिये, दीपक न घी का हाथ से।
दुर्दैव ! कितने दिवस तक, तुम रहोगे मम साथ मे॥

(४९१)

वे 'हेल्थ-अफसर' हैं कहां, दीदार टुक दे जाइये।
परसों बने 'लड्डू' सड़े हैं आज, सो, ले जाइये॥
गोदाम घी के सामने से, गुजर जब होता-कहीं।
तो कै वहीं, ज्वर भी वहीं, हैजा वहीं, मुरदा वहीं॥

३८--कितने ही हलवाई

(४९२)

हैं आप की पांचों उंगलियां, रात-दिन घी में पड़ीं।
उस दही मे बतलाइये, हैं मक्खियां कितनी सड़ीं॥

मीठा स्वदेशी बेचते, इस सत्य को शावाश है।
ईमानदारी आप की पर, मुझे तो, विश्वास है॥

३९--कितने ही बजाज

(४९३)

देशी बताकर आपने कपड़ा दिया जो रात था।
था एक देशी सूत, मिल का सूत भी तो साथ था॥
देशी—विदेशी को मिलाकर, रासता दिखला दिया।
नेता नहीं जो कर सके, नेतृत्व सो बतला दिया॥

(४९४)

लेकिन दिया जो आपने मोजा सुनहले सूत का।
पाया बचन था आप का, जोड़ा अचल मजबूत का॥
था पैर ज्यो डाला वहां, देखा नजर ने कांप के।
लज्जित खड़े श्रीमान थे, थे दांत बाहर आप के॥

(४९५)

कोई बजाज गरीब जन को नापते कम वस्त्र हैं।
देखो, दुखी पर भी चलाते वे कपट को अस्त्र है॥
लखकर अशिक्षित मनुज या, सीधा निरख ग्राहक वहीं।
वे दाम तिगुने ले रहे, उन को तनिक लज्जा नहीं॥

(४९६)

कोई बजाज सदैव सच्ची न बात मुख से बोलते।
उपयुक्त थोड़ी नफा पर, दूकान अपनी खोलते॥

अनुकरण उनका ही करो, गम्भीरता में चाव हो।
केवल न धन का भाव हो, कुछ धर्म का भी भाव हो॥

४०—कितने ही दरजी

(४६७)

कुरता दिया था, नाप अपने से बनाने के लिये।
जो दाम मांगे आपने, स्वीकार सो हमने किये॥
कुरता बहुत छोटा हुआ, वह बहन की कुर्ती हुई।
दर्जी! कलेजे में घुसेड़ी, आज तुमने भी सुई॥

४१—कितने ही तमोली

(४६८)

पैसा तुम्हे 'पक्का' दिया, यह पान क्यो 'कच्चा' दिया।
रखदी 'सुपारी' सड़ी सी, बाजार मे लज्जित किया॥
'जर्दा' दिया है आपने, सूखी हुई या दूब है?
है 'खैर' बिलकुल कम दिया, 'चूना' लगाया खूब है॥

४२—कितनी ही शाकवालियाँ

(४६६)

'पालक' तनिक बाकी नहीं, 'सोया' बहुत सा रख लिया।
'मेथी' नजर पड़ता नही, 'बेगुन' हजारो भर दिया॥
दूकान मे 'नीबू' नही, 'लहसन' गजब का बढ़ रहा।
अब 'आम' का दर्शन कहीं, है ढेर अरवी का महा॥

४३--कितने ही घड़ीसाज

(५००)

मैं घड़ी प्रातः दे गया, तुमको बनाने के लिये।
या 'हृदय' रूपी उस कमानी को चुराने के लिये॥
मैं चाहता था मूल्य उसका, कम न हो कायम रहे।
तुमने उसे ऐसा किया, जीवित रहै तो कम रहे॥

(५०१)

वह घड़ी मुझको, मित्रने, निज चिन्ह रूप प्रदान की।
वह 'हृदय' रूपी थी मुझे, थी प्राण मेरे प्राण की॥
तुमने हमारे प्राण पर, आघात अति भीषण किया।
तुमने छला मुझको नहीं, है कत्ल मुझको कर दिया॥

४४--कितने ही ग्वाले

(५०२)

वह चार आने सेर वाला, दूध जो है दे रहा।
ग्वाला, सदा पानी मिला के, दाम ही तो ले रहा॥
खाता कसम है, दूध मे, जल है नहीं डाला कभी।
परमातमा! किस भांति वे, कर्तव्य पावेगे सभी॥

४५—कितने ही सोनार

(५०३)

चांदी उसे देकर नयी, पाजेब बनवाई नयी।
प्रातः उसे देखा तो कीमत ठीक आधी रह गयी॥

उसने न माताका कड़ा भी बिन चुराये था रचा।
उसकी 'सफाई' से न रानी और राजा तक बचा॥

४६--कितनेही स्टेशन कुली

(५०४)

साहब! चलो पहुंचा सकेंगे हम ठिकानेपर अभी।
जो चित्त हो सो दीजिये, झगड़ा नहीं होगा कभी॥
इतना कहा ले बक्स 'पश्चिम' को चला चालाक सा।
तो दूसरा 'पूरब' गया, मैं रह गया अवाक सा॥

४७—वर्तमान के शराबी

(५०५)

वह झूमता है आ रहा, बोतल लिये निज हाथ से।
चारो तरफसे नशा व्यापक हो रहा है साथ में॥
गिरही पड़ा पेशावखाने मे लुढ़क कर, प्रेम से।
बातें वहीं करता पड़ा, मानो पड़ा है क्षेम से॥

(५०६)

कुछ लोग चुपके भवन मे, जब रात का पर्दा पड़े।
तब सुर्ख बोतल खोल, प्याला गोल चक्कर मे उड़े॥
लेकिन—अधिकता मद्यकी अब बन्द करनी चाहिये।
उन जातियों को इस तरफ निज दृष्टि धरनी चाहिये

४८--तम्बाकूकी दूकानें

(५०७)

यदि आप हुक्का-मस्त है, तो चरस-गांजा पीजिये।

या लखनऊ का वह खमीरा, चिलम मे रख लीजिये ॥
यदि आप खाते हैं तमाखू, खाइये जर्दा यही ।
सिगरेट पीना है अगर तो नाम रट लीजे सही ॥

(५०८)

ये 'टैटलर' ये 'टाइगर ये 'मून' ये 'पासिंग शो ।
क्या चाहिये 'सिलवरका क्लाउड और'थ्रीकेसिल' कहो ॥
'सीजर' पियेगे आप अथवा एक 'सिगार' चढ़ाइये ।
या फूक डालो 'बीड़ियां' तशरीफ अन्दर लाइये ॥

४६--शराब-ताड़ीकी दूकान

(५०६)

ये 'शैम्पियन' ये है 'बिअर' यह 'रम' निहारो सामने ।
है चाह 'थ्री हन्ड्रेड वन' या काम 'विस्की' से बने ॥
देशी उड़े अंगूर' की, यह शुद्ध 'महुए' की नई ।
ताडी पिओगे तो पिओ, ताजी उतारी है गई ॥

५०--वर्तमानके जूते

(५१०)

देशी 'चमोटा' चाहिये, या 'पम्पशू' की चाह है ।
या उस 'अमेरकन' के लिये, मन में उठी परवाह है ॥
या 'बूट' की दरकार है, 'स्लीपर' नया यह लीजिये ।
यो क्रूमलेदर प्राप्त कर, उद्धार अपना कीजिये ॥

५१--लाइब्रेरी के कुछ वाचक

(५११)

वह दिव्य ' वाचक ' है शहर की ' लाइब्रेरी ' के लिये ।
हैं चित्र बीसो जेब में अखबार नकटे कर दिये ॥
अच्छी लगी कविता अगर तो सोच कर मन में वहीं ।
चाकू निकाला जेब से अब देखिये--कुछ भी नहीं ॥

५२--वर्तमान की रंडियां

(५१२)

अब नाचना गाना कहां, उसमें न पाती नाम हैं ।
दिन-रात खेती है वही, वे पाप ही के धाम हैं॥
रक्खे नियम कुछ भी नहीं, चाहे जो डुबकी दे रहा ।
गरमी विकट, सूजाक अति, 'परसाद' यात्री ले रहा ॥

(५१३)

जो है मदरसे जा रहे, बच्चे अभी नादान हैं ।
उनको नहीं कुछ ज्ञान है, उनके सुकोमल प्रान हैं ॥
उन पर नजर डालो नहीं, वे पुत्र सम हैं चाचियो ।
पीना अगर हो रक्त तो, मजबूत को पकड़ो पियो ॥

(५१४)

प्रत्येक म्युनिसपैलिटी का, प्रथम यह कर्त्तव्य हो ।
वह रण्डियां बाहर रहे, तो सुखद कुछ होतव्य हो ॥
अथवा विवाहित जीवनी मे, डाल दीजे अब उन्हे ।
इस नीच पेशे में मिलै, विश्राम अनुभव कब उन्हें ॥

५३--वर्तमान की नौटंकी

(५१५)

हे 'हाथरस' वालो तुम्हारी, जय रहे, संसार मे।
उन वालको को पकड़ डूबे, आप भी मझधार मे ॥
जब 'चोब' पड़ती है 'नगाड़े' पर, सुनी जाती कहीं।
तो रात आधी मध्य लड़के दौड़ कर पहुँचे वहीं ॥

(५१६)

कविता नहीं वह शुद्ध है, लेकिन 'नगाड़ा' काल है।
नौटंकियो ने हिन्द मे पूरा बिछाया जाल है ॥
अश्लीलता की भूमि पर, अब भोग का डंका वजा।
लड़के नये, लड़की नयी, दोनो जनो की है कजा ॥

(५१७)

वह बात गन्दी थी कहां, उनसे न जो जाती वकी।
वल्लाह, साहब आपने भी, टांग तोड़ी गजब की ॥
माशूक ने खाया जहर, आशिक गया जंगल चला।
बतलाइये इस समय मे, पचडा यही लगता भला ॥

५४--वर्तमान हारमोनियम

(५१८)

था आदि वाद्य सितार का, उस की नकल—सारंगियां।
यह 'हारमोनिम' कौन है, मुझको बता दीजे-मियां ॥

है शत्रु स्वर-सञ्चार का, भद्दी निरी आवाज है।
हां-कलियुगी दरबार का, बिलकुल अनोखा साज है॥

५५—वर्तमानके फोनोग्राफ

(५१९)

'चूडी' चढ़ा दी एक ऊपर 'सुई' चलती जा रही।
रण्डी 'बकस' में बन्द सब, महफिल उमड़ती आरही॥
तस्वीर बाजों पर बनी, 'कुत्ते' सुनें गाना वहां।
क्या व्यंग करना था यही, पर ख्याल हम को है कहां॥

५६—वर्तमानके बाइसकोप

(५२०)

है रोशनी अत्यन्त कड़वी, नेत्र नष्ट स्वरूपिनी।
तस्वीर खेलें खेल जिनकी, बुद्धि बिलकुल तम बनी॥
यद्यपि वहां पर दृश्य दिखला, देसके विज्ञान के।
पर कर्म सारे हो रहे, बाजार मे, अज्ञान के॥

५७—वर्तमानके नाटक

(५२१)

अति धूम नाटक मंडली की देश हिन्दुस्तान में।
वह ब्रह्मचर्य्य विधान पहुंचा आज कबरस्तान में॥
बल-वीरता के शत्रु उन के खेल केवल 'मोह' के।
नाटक नहीं है, है अखाड़े, दुर्व्यसन के द्रोह के॥

(५२२)

अब से अगर नाटक बने, हरिभक्त, वीर स्वभाव के।
कर्तव्य दिखलावें सरस, नाटक वने शुभ चाव के॥
तो नाटको से सहज शिक्षा, प्राप्त हो संसार को।
उद्धार हो नर-नारि का, शोभा मिलै बाजार को॥

५८—वर्तमानकी रासलीला

(५२३)

लड़के बने श्री कृष्ण जो, वृपभानु तनया—राधिका।
ये रूप दोनों अलख हैं, पर दृश्य है अब व्याधि का॥
देखे न उनको भक्ति से, दर्शक निहारें—मोह से।
शिक्षा नही कुछ सीखते, मतलब उन्हे है द्रोह से॥

(५२४)

बस एक घण्टा रास कर, फिर हाल नौटंकी रची।
हा कृष्ण ! तेरे रास की, लीला नही कलि में बची॥
अब स्वाद आता है नहीं, बाजार को, प्रभु खेल मे।
अब मजा आता " गुलवकावलि " और धक्का पेल मे॥

(५२५)

समझे नही श्री कृष्ण लीला, सफल नाटक कार भी।
वे रासलीला के खिलाड़ी, भेद क्या जानें अभी॥
बलराम जी के चरित भीतर, शुद्ध सुन्दर ज्ञान है।
श्री कृष्ण सच्चिदानन्द के, आचरण में विज्ञान है॥

५६--वर्तमानकी रामलीला

(५२६)

जिसको बनाया राम जी, जिसको बनाया जानकी।
पूजा सकल विधि से रची, फिर आरती सविधान की॥
पश्चात गोदी में उठा, बाबू गये ले राम को।
वह सेठ लेकर जानकी, पहुंचे भवन आराम को॥

(५२७)

देकर उन्हें दस पांच रुपये, मुंह महा काला किया।
उपदेश आखिर में यही, श्री राम-सीता से लिया॥
कलिकाल अतिशय धन्य हो माया अगोचर आप की।
यह "पाप लीला" बंद हो, यह कथा है परिताप की॥

(५२८)

लोगो! तुम्हारी बुद्धिको, हैजा हुआ सच मानना।
इन नीच कर्मों को कभी, फलहीन मत पहिचानना॥
जो लोग मैलाखोर है, उनको 'सुअर' कहना सदा।
निज बाल बच्चों को वहां से दूर रखना--सर्वदा॥

(५२९)

अत्यन्त पावन बुद्धि द्वारा, राम लीला कीजिये।
श्रीराम की मर्याद को, आदर हृदय से दीजिये॥
केवल मनोरंजन नहीं, उसको समझना चाहिये।
उतने समय, वह सर्व लीला 'सत्य' लखना चाहिये॥

(५३०)

कर्तव्य निज की चातुरी, श्री राम जी की धन्य है।
पति-प्राण मिथिला नन्दनी का भाव शुद्ध अनन्य है॥
वह भ्रातृ लक्ष सुहावना श्री लक्ष्मण का जान लो।
श्री भरत जी की भक्तिका, लोहा निराला मान लो॥

(५३१)

मद देख दशमुख का कठिन, अभिमान अपना छोड़िये।
लख कालनेमी की दशा, अपने कपट को तोड़िये॥
देखो बुराई का नतीजा, दिव्य लंका देखिये।
सबकी भलाई के अवध का, विजय डंका पेखिये॥

६०—वर्तमान की रेलगाड़ी

(५३२)

है लाभ बीसो रेल से, पर इन्तजाम न ठीक है।
नूतन सुधार न हो रहा, रक्षित पुरानी लीक है॥
व्यवहार यात्री लोग से, अच्छा वहां होता नहीं।
पड़ जाय नारी यदि अकेली दुर्दशा होती वही॥

(५३३)

खोले नही जाते अधिक डिब्बे जरूरत देखके।
जाते खड़े हैं बीसियों, सब अंग उनके हैं थके॥
हैं मालगाड़ी मे ठुसे, यात्री बहुत देखे गये।
बीमार कुछ तो पड़ गये, कुछ प्राण गत लेखे गये॥

(५३४)

यदि टिकट 'थर्ड कलास' का, पर, मालगाड़ी प्राप्त हो।
वह अगर 'इन्टर' मे घुसे तो क्रोध क्योंकर व्याप्त हो॥
गाली सुना देते वही, है शान नौकर, छांटते।
कपड़े अगर सादे रहे तो 'गुरू' को भी डांटते॥

(५३५)

यदि माल भेजा जाय तो, सब माल पहुंचेगा नही।
बोरा नया लावे, लिखाया था पुराना है वही॥
लिखदो—न पहुंचे माल तो भी रेलवे निर्दोष ही।
कर्तव्य अपने का उन्हे, होता नही है होश ही॥

(५३६)

भेजी गयी थीं चूड़ियां, तो काच आधा हो गया।
अमरूद आधे रह गये, था टोकरा भेजा गया॥
शीशी मिली खाली मुझे, था इत्र सो काफूर है।
सुनते शिकायत भी नहीं, चुप साधना मशहूर है॥

(५३७)

जो टिकट देने मे कभी, रिश्वत वसूली कर रहे।
जो टिकट द्वारा जेब मे, दो-चार आने भर रहे॥
हो जांच उनकी खूब ही, उनको निकालो जल्द ही।
क्यो देर से देते टिकट, है दाल मे काला कही॥

(५३८)

कम बोझ पर भी कह रहे, महसूल देकर जाइये।
अथवा—उन्हे बेलाग भिक्षा इसी विधि दिलवाइये॥

इस्टेशनों के मासटर रक्खें, नजर चहुंओर ही।
जब रेल होती है खड़ी, करते न तब वे जोर ही॥

६१—बुद्धिहीनों का धर्म

(५३९)

मस्जिद यहां पर है—नहीं बाजा बजाना चाहिये।
अवसर खुशी का है नहीं मातम मनाना चाहिये॥
बाजा बजेगा तो बजेगी, खोपड़ी से खोपड़ी।
कुछ जगह पर है आजकल, इस खेल की रौनक बड़ी॥

६२—वर्तमान के कम्पनी बाग

(५४०)

है स्वास्थ्य के रक्षक नहीं, अब बाग शहरो के यहां।
'माईडियर' ने कहा 'माई डारलिंग' आना वहां॥
है मौज करतीं नारियां, जिनको रहत परदा नहीं।
लड़के बिगाड़े जा रहे, है घूमते 'रसिया' वहीं॥

६३—चुनाव मींमासा

(५४१)

जो लोग मेम्बर, कौसिलो मे, जा रहे सद्भाव से।
डिस्ट्रिक्टबोर्ड म्युनिसपिलैटी, जा रहे जो चाव से॥
चुनिये सभापति वो कमिश्नर या सभासद यों कही।
तो निम्न बातो का हृदय मे ध्यान रख लेना वहीं॥

(५४२)

सरकार ने अधिकार कुछ इस रीति से हमको दिये।
इस ढग से भी देश-हित के कार्य्य जा सकते किये॥
लेकिन न वोटर लोग निज अधिकार को पहिचानते।
वे भेद ठीक चुनाव का अच्छी तरह नहिं जानते॥

(५४३)

जो भय दिखाकर आपको, निज वोट लेना चाहता।
जातीयता की, आपको, जो भ्रान्ति देना चाहता॥
रिश्ते दिखाकर अपको, जो नाम अपना चाहता।
धार्मिक बता कर आपको, जो व्यर्थ बढ़ना चाहता॥

(५४४)

इनको न देना वोट, इतना जानना कर्तव्य है।
मत लोभ में फंसना कहीं, दुखपूर्ण वह होतव्य है॥
सब पक्षपात विसारिये, यदि देश-हित का ध्यान है।
निर्भय हृदय से वोट दे, सो बुद्धिमान सुजान है॥

(५४५)

उम्मीदवारों के छलो में फंस न कोई वोट दे।
धमकी न देखो भीत हो, वह अगर कोई चोट दे॥
निज व्यक्ति गत आराम छोड़ो, लाभ कीजे देश का।
इस भांति सत्य चुनाव से, जो प्राप्त फल उद्देश का॥

(५४६)

जो अनुभवी निर्भीक हो, जो हो स्वतंत्र स्वभाव का।
जो त्याग करना जानता हो, नाम आदिक चाव का॥

आदर्श निर्मल, लक्ष्य सुन्दर, कर्म मे लवलीन हो।
दो वोट उसको, जो कि जनता-प्रेम मे आसीन हो॥

(५४७)

हे सभ्य मेम्बर! आप अपने कर्म मे तत्पर रहे।
यह कर दिखावे आज जो, कुछ सामने सबके कहे॥
विश्वास का अपघात करना, चाहिये तुमको नहीं।
देखो ! न जनता आपसे नाराज हो बैठे कहीं॥

६४—निवेदन

(५४८)

प्रति शहर मे हो एक 'सज्जन-सभा' शहर निरीक्षिका।
वह सभा हो प्रति दोष-गुण इत्यादि भाव परीक्षिका॥
वह सभा ईश्वर भक्त हो, अनुरागिनी हो धर्म की।
वह सभा 'फूट' विहीन हो, संचालिका हो कर्म की॥

(५४९)

'सज्जन-सभा' कायम करो, अति प्रेम आपस मे करो।
विद्वेष रह पावै नहीं, उस जहर से हरदम डरो॥
तब आप सब घुस जाइये, म्यूनीसपैल्टी मे तभी।
घुस जाइये डिस्ट्रिक्ट वोरड मे, जगह पाओ जभी॥

(५५०)

जाकर वहां अभिमान या, अधिकार दिखलाना नहीं।
आदर्श निज कर्तव्य वाला, भूल भी जाना नहीं॥
सरकार भी संतुष्ट हो, लख कर सफाई आपकी।
हम लोग साधारण पुरूष, गावे बड़ाई आपकी॥

चतुर्थ अध्याय

प्रथम परिच्छेद—कुरीति विभाग

द्वितीय परिच्छेद—सुधार की सम्मति

तृतीय परिच्छेद—सामायिक प्रसंग

चतुर्थ परिच्छेद—अछूतोद्धार
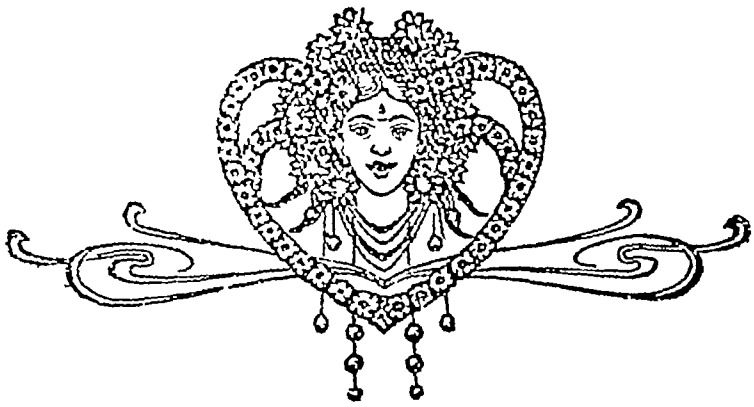
चतुर्थ अध्याय

प्रथम परिच्छेद

कुरीति-विभाग

(५५१)

सब घरो मध्य, कुरीतियों ने, जड़ जमा ली, जोर से।
बल नष्ट होता जा रहा, जिनकी महान मरोर से ॥
अब, कान बहरे हो रहे, उन के भयानक शोर से।
क्या आप आशा देंयगे, अपने भवन की ओर से ॥

१—बाल-विवाह

(५५२)

उन हिन्दुओ की जाति में, ये रोग जब से आगया।
पौरुष गया तब से सभी, बस, एक आलस, छा गया ॥
अल्पायु ! कितने हो गये, उस का नही कुछ ठीक है।
गाड़ी चली ही जा रही, जैसी गयी थी, लीक है ॥

(५५३)

यूरोप में, इस भांति, बालक व्याह, होते हैं नहीं।
वे मौत के उस काल मे, अल्पायु मे, जाते कहीं ॥
है तेज उन में, शक्ति उन में, है धरा-सी-धीरता।
गम्भीरता कितनी भरी, कितनी भरी है वीरता ॥

(५५४)

अंगरेज मत मे बालको का, ब्याह जो होता कहीं।
तो राज्य भारत वर्ष जैसा, प्राप्त हो सकता नहीं॥
विज्ञान द्वारा वे बना, सकते नहीं, कोई कला।
उन को नहीं, हम हिन्दुओ की, भांति ब्याहो ने छला॥

(५५५)

है बालको का वीर्य कच्चा, अङ्ग सब कमजोर हैं।
शिक्षा समाप्त न हो सकी, अज्ञान मे सरबोर हैं॥
है धर्म तो कहता उन्हे, कुछ ब्रह्मचर्य विधान हो।
पर कर्म उन से ले रहे, जो भोग का ही ध्यान हो॥

(५५६)

अन्धे हुये, माता—पिता, उन 'नातियो' की, चाह मे।
ले कर बधू वर मांगते, सन्तान का, 'दरगाह' मे॥
कर ब्याह छोटी आयु मे, सम्भोग का रस्ता दिया।
बस पढ़ गया बेटा बहुत, ही, बन्द हो, बस्ता किया॥

(५५७)

हे हिन्दुओ! ये है कुल्हाड़ी, काटती जो आप को।
बेटा-बहू मर जायँगे, दे शाप, पापी बाप को॥
जिन्दा रहेगे अगर वे, तो मृतक से जीवित रहे।
अङ्गरेज भारत वर्ष को, इस लक्ष से, मुर्दा कहे॥

(५५८)

माता-पिता दुश्मन बने, निज बालकों को ब्याहते।
किस जन्म की है शत्रुता, जो पुत्र संग निबाहते॥

उनको सुमति आती नहीं, वे देश मध्य, कलङ्क हैं।
माता-पिता दुर्भाग्य-सूचक, बालकों के अङ्क हैं॥

(५५६)

हे बालको ! मम देश के, अवलम्ब निज का लीजिये।
जो कर्म अच्छा हो, उसे, भय छोड़, दिल से कीजिये॥
ये भोग वाला रोग ही, दुर्भाग्य भारतवर्ष का।
कमजोरियों का कठिन फाटक, शत्रु है उत्कर्ष का॥

(५६०)

अपने बदन का हक्क, सब को, आप ही से प्राप्त है।
है देह ही अपनी प्रिया, सिद्धान्त सच्चा व्याप्त है॥
ये काम क्रोधादिक प्रबल, हैं शत्रु अपने बदन के।
खाते हमीं को हाय ! देखो, शत्रु घर के-सदन के॥

(५६१)

माता-पिता से विनय करना, बालको का धर्म है।
कुछ दिन लँगोटी बांधना, यह हम सभो का कर्म है॥
जो व्याह करते शीघ्र ही, उन को जरा इन्कार हो।
शृंगार-रस का त्याग हो, गम्भीरता पर प्यार हो॥

(५६२)

होते बहुत थे ब्रह्मचारी, देश के बालक जहां।
शृंगार उन के सामने, किस रूप से जाता वहां॥
सब अङ्ग प्राणायाम के, थे जानते, अभ्यास से।
गायत्रि-माँ के तेज से, बातें करें, आकाश से॥

(५६३)

वह ब्रह्मचर्य-विधान ही, शृङ्गार मे आया हुआ।
अब तो वही शृङ्गार सारे अङ्ग, मे छाया हुआ॥
मन का सजाना छोड़ कर तन, का सजाना व्यर्थ है।
अब हो सजाना बुद्धि का, इस छन्द का यह अर्थ है॥

(५६४)

सो कर उठे, जब द्वार पर, रवि, ने पुकारा, घाम से।
बीड़ी लगे तब फूँकने, क्या काम, प्रभु के नाम से॥
थे रात भर सोये रहे, जो घोर तम का सङ्ग था।
अब दिवस मे जागे फिरो, जो सिर्फ रज का रङ्ग था॥

(५६५)

शौचादि कर बैठे हुये, हैं, हाथ में साबुन नहीं।
साबुन बिना इन बालको का, स्नान हो सकता नहीं॥
साबुन लगाओ हृदय मे, तन पर लगाना व्यर्थ है।
विद्यारथी बन कर रहो, यह ही हमारा अर्थ है॥

(५६६)

धोती महीन महान है, सब अङ्ग, सब को दीखते।
सुकुमार बन कर, दृष्टि सब की, खींचना क्यो सीखते॥
सिर में पड़ेगा तैल जो, बाजार मध्य प्रसिद्ध है।
यह तैल सरसों का लगाना, हृदय मध्य निषिद्ध है॥

(५६७)

जब वह सुगन्धित, और प्रमुदित, तैल बालो में पड़ा।
तब 'मेडइन जर्मन' लिखा, कंघा किया सिर मे खड़ा॥

जिस भांति चलता खेत में, हल, सीध में या सामने।
उस भांति कंघी चल गई, लो सामने से आमने॥

(५६८)

प्रथमा प्रथम थी एक ही, अब मांग निकली तीन हैं।
ऐ मूर्ख, नारी भाव में, इस भांति क्यों लवलीन हैं॥
शाबास ! जीतीं रंडियां, हो वीर बेटा बाप के।
अब लीजिये सिन्दूर भी, जो सामने है आप के॥

(५६९)

बिस्कुट निगल, सोडा पिया, अब हैं मदरसे जा रहे।
कलिकाल के विद्यारथी, अच्छी सफलता पा रहे॥
फिर आपने धोती उतारी, पेन्ट पहिना चाव से।
पेटी कसी है चाम की, जानै खुदा किस भाव से॥

(५७०)

जो लोग हिन्दू-जाति में, वह रहें हिन्दू-वेश में।
जो जाति, मर्यादा तजै, वह ही रहेगी क्लेश में॥
निज रूप को जाना नही, निज नाम को माना नहीं।
इतिहास भारत वर्ष का, अच्छी तरह जाना नहीं॥

(५७१)

जब नाम हिन्दू, रूप हिन्दू, कर्म हिन्दू का करो।
मर्याद पालक, शान्ति रक्षक, संगठन सच्चा करो॥
आधीनता को धारिये, अनुराग त्यागो राज का।
है हाल असली जानना, इस वर्तमान-समाज का॥

(५७२)

ये साज जिसका सज रहे हो, तन सजाने के लिये।
है रख लिया कुछ पास में, उस से लजाने के लिये॥
वह वीर निज कर्त्तव्य में, किस धीरता से जा रहा॥
वह शक्तिचारी मार्ग से, है राज्य अपना ला रहा।

(५७३)

अंगरेज का मन भोग मे, रहता नही लवलीन है।
हम हिन्दुओं का वदन कितना, कांति-हीन मलीन है॥
पोशाक वे निज पहिनते, शृङ्गार उस मे है नहीं।
अनुकरण करते वे अगर, तो दोप भी पाते वही॥

(५७४)

अव कोट पहिना जायगा, चश्मा लगाकर सामने।
मोजे चढ़ाये रेशमी, यह दिन दिखाया, राम ने॥
घर में नहीं है भंग भी, है वाप जी की नौकरी।
धिक्कार पाने योग्य है, यह आप की वावूगिरी॥

(५७५)

दो एक पुस्तक, और कापी, पेनसिल है जेव मे।
पीते चुरट, जाते चले, डूवे हुये सव ऐव मे॥
जाते मदरसे की तरफ, है आंख लड़को में लगी।
तकदीर हिन्दुस्थान की, यों छोड़ कर वाहर भगी॥

(५७६)

हैं पढ़ रहे इतिहास भी, नटखट पना भी कर रहे।
मन से नही, पर, सभ्यता वश, मासटर से डर रहे॥

अब 'अर्थमेटिक' है कहां, रेखागणित भी दूर है।
लिखना नही, पढ़ना नहीं, बस खेलना भरपूर है॥

(५७७)

हैं अदब कितना कर रहे, हम, मासटर के संग मे।
अभिमान कितना भर गया, इन बालको के अंग मे॥
गुरुदेव की झिड़की निरख, हैं फाड़ते जामा तभी।
सीखा नही हम से गया, गुरु का 'अलिफनामा' अभी॥

(५७८)

नाराज होकर मासटर से, दल बटोरा आप ने।
गुरुदेव ही से युद्ध का, पीटा ढिंढोरा आप ने॥
हो पीटना तुम चाहते, यह शिष्य का व्यवहार है।
तैयार तुम पर हो गई, तकदीर की भी मार है॥

(५७९)

तुम से अपाहिज मन-मुखी, विज्ञान पढ़ सकते नहीं।
उन्नति सरीखे शैल पर, लँगड़े मनुज चढ़ते कहीं॥
अवगुण निहारै गुरू के, सो अवगुणी बन जायगा।
जो देखता गुण सर्व में, हरिद्वार वह ही पायगा॥

२—मास्टरों की दशा

(५८०)

जिन बालकों को साथ ले, आगे बढ़े तुम जा रहे।
उन के पिता के रूप में, फिर क्यो नहीं दिखला रहे॥

वे हैं अभागे मासटर, 'पश्चात-गामी' पातकी ।
सरकार के दुश्मन वही, विश्वास के हैं घातकी ॥

(५८१)

जब मासटर के अवगुणो का, अनुकरण लड़के करें ।
तब अवगुणों को देख लड़के, मासटर से क्यों डरें ॥
गुरु-शब्द की निन्दा अगर, संसार में छा जायगी ।
अवनति उमड़ती जायगी, उन्नति नही हो पायगी ॥

(५८२)

जगदीश ! भारतवर्ष के, हम बालकों को बुद्धि दो ।
स्वाधीनता दो ! क्षमा दो ! अन्तः करण की शुद्धि दो ॥
हिन्दू पने का ध्यान दो, फिर शान को जाग्रत करो ।
"रामा अनुग्रह" नेम काही भाव हम सब में, भरो ॥

(५८३)

जिसके हृदय में, नेम प्रति, सच्चा अटल अनुराग है ।
जिसके हृदय मे सत्य है, पाखण्ड-छल का त्याग है ॥
अपनी अवस्था मानता, जो, राम के आधीन है ।
बालक उसी को जानिये, जो, नीति मे आसीन है ॥

(५८४)

यह सीखने की आयु है, विद्यारथी सा नाम है ।
विपरीत होता जा रहा, उन बालको का काम है ॥
जिसमे विवेक विचार हैं, वह पुत्र हिन्दुस्थान का ।
हिन्दू, भरत का नाम है, जो भक्त है भगवान का ॥

३—बालकों का नाच

(५८५)

हत-वीर्य, भारतवर्ष की है, बालको की जो दशा।
उसको कहे हम कर्कशा, या मान लेवे परवशा॥
लड़के हजारो नाचते, फिरते हमारे सामने।
अपकीर्ति पाई है बहुत, हम हिन्दुओं के नाम ने॥

(५८६)

नौटंकियों मे नाचते, कितने मनोहर छोकड़े।
हैं सुर्ख चूनर ओढ़ते, पग मे पहिनते हैं छड़े॥
काजल लगा कर, पुत्र वे हैं, नाचते बाजार मे।
अन्धेर कितना हो रहा, इस हिन्द के संसार में॥

(५८७)

अश्लील गाने गा रहे, निर्लज्जता है छा रही।
बालक-विलासी-दर्शकों की, घटा-घिरती आ रही।
ब्रह्मचर्य्य टूटा, और शिक्षा-हीन, वे बालक, हुए।
बालक हुए या वंश की, मर्य्याद के घालक हुए॥

(५८८)

वे नाटकों में बालको की, सैन्य नाटक रच रही।
गाने-बजाने-नाचने मे, धूम उनकी मच रही॥
वे रंडियां बन कर खड़े, होते हमारे सामने॥
उद्धार सब का कर दिया, इन बालकों के काम ने॥

(५८९)

उन बालकों के भवन वाले, बोल सकते हैं नहीं।
है प्रश्न रोटीका कठिन, यह भूल सकते है कहीं॥
उस दीन बालक के लिये, कोई ठिकाना भी नहीं।
गुरु-कुल बहुत, ऋषिकुल बहुत, पर फीस लगती है वही॥

(५९०)

जब तलक बालक-वृन्द-ऊपर, दृष्टि जावेगी नही।
आशा नवीन भविष्य की, निज हाथ आवेगी नही॥
उन बालकों मे आतमा है, दीन भारत वर्ष की।
भगवान! इति होगी कभी, अपने अमित अपकर्ष की॥

(५९१)

हे बालको! नाचो! हमारे नाम पर नाचा करो।
माता-पिता के नाम पर, यो ठोकरे खाते मरो॥
जब देश के नेता नही, पहिचानते तुमको अभी।
उद्धार भारतवर्ष का, है दूर 'उग्रह' वह सभी॥

(५९२)

हत वीर्य बालक-वृन्द, नारी रूप, धारण कर रहे।
निर्लज्ज जीवन जी रहे, बे-मौत, बेढब मर रहे॥
जो कर्म करना था उन्हे, वह कर्म कर पाये नहीं।
है वृक्ष, लेकिन समय-वश, वे फूल-फल लाये नही॥

(५९३)

जगदीश! क्या इन बालको पर, आपकी ममता नहीं।
हे शक्ति माता! बालको मे, आपकी समता नहीं॥

हे हिंद की माता अभागी, दीन-हीन-मलीन है।
कोई जगह तेरी नहीं, वह, शोक में आसीन है॥

४—अमीरों के सपूत

(५६४)

अबके अमीरों के सुतो का, हाल खूब विचित्र है।
आंसू बहाने के लिए, काफी कटीला चित्र है॥
है प्रेम पढ़ने में नहीं, विद्या उन्हें है काटती।
विद्या निकट जाओ नहीं, यों लक्ष्मी है डाँटती॥

(५६५)

हैं पानखाने में निपुण, हैं ताश मे आचार्य वे।
गाली सुनाने मे निपुण, हैं आज हाय अनार्य वे॥
उड़ते कबूतर नित्य ही, कैसी पतंगे उड़ रही।
बाधा अगर देने चले, तो, पिता भी रोते वहीं॥

(५६६)

जो पुत्र की अभिलाष ले, सम्भोग हैं करते नहीं।
वे विषय का फल पुत्र रूपी, नाम से पाते कहीं॥
जो हैं विषय या भोग के, आनन्द से पैदा हुये।
वे वर्णसंकर-रूप हैं, है पाप, उन सब को छुये॥

(५६७)

निज देश सेवा के लिए, उनको जगाना व्यर्थ है।
सोते रहेंगे, वे सदा, यह दुर्गुणों का अर्थ है॥

है नौकरों ने ही बिगाड़ा, था उन्हें, सब ओर से।
वह बँध गये हैं मूढ़ता, की बहुत लम्बी डोर से॥

(५९८)

फुरसत नही है यार लोगो, की भयानक फिक्र से।
फुरसत नही मिलती उन्हे, उन रंडियो के जिक्र से॥
अच्छी वहू-बेटी निरख, उनका फिसलता चित्त है।
मेले मदारो के लिये, तैयार मोटर नित्त है॥

(५९९)

सिगरेट पीना सीख कर, वह मद्य पीना सीखते।
कोई नशे बाकी नहीं, उनमे नहीं जो दीखते॥
है खेल का आनन्द, अथवा, भोग का आनन्द है।
अच्छे विचारो का वहां, बाजार गोया वन्द है॥

(६००)

घेरे हुये बीसों सखा, बनते बड़े ही मीत हैं।
भीतर भयानक सर्प हैं, बाहर बने नवनीत हैं॥
है लक्ष उनका धन-हरण, तारीफ मिथ्या गा रहे।
सामान सत्यानाश का, हैं सामने वे ला रहे॥

(६०१)

अबके रईसो के सपूतो, मे भरा शृंगार है।
सुकुमारता में पल रहे, पाखण्ड का व्यापार है॥
बारीक कपड़े पहिनते, करते नहीं व्यापार हैं।
हे हे अमीरो! आप के, बालक बने भूभार हैं॥

(६०२)

दस-पांच रुपये फूँक देने मे, सदैव समर्थ हैं।
पर एक पैसा दान देने मे, बड़े असमर्थ हैं॥
अत्युक्ति तो होगी नहीं, इनके लिये जो कवि कहै।
हिन्दू रईसों के कुमारों, में सदा कलियुग रहै॥

(६०३)

घुड़दौड़ के मैदान में, वह देखिये, वह जा रहे।
उस 'लाटरी' के खेल में, कितने झपटते, आ रहे॥
रखते सदा वे ध्यान है, हुक्काम के आराम का।
विश्वास बिलकुल है नही, हिन्दू-सभा के काम का॥

(६०४)

दो-चार लड़के खूबसूरत, साथ लेकर, घूमना।
गोदी उठा कर हाय, कुत्तो को, पकड़ कर, चूमना॥
पड़ कर किसी के बीच मे, झगड़ा बढ़ाना है उन्हें।
सब ओर के धर्मातमा का, बल घटाना है उन्हें॥

(६०५)

दो-एक लड़कों को लिये, बाजार में हैं, जा रहे।
वे हँस रहे हैं और लड़के, गान अपना गा रहे॥
श्रीमती 'दिलवर जान' का, कोठा निरख कर चढ़ गये।
निर्लज्जता की ओर, भय को छोड़, कितना बढ़ गये॥

(६०६)

किस सभ्यता के साथ, आदर युक्त, उससे बोलते।
किस दीनता के साथ, उसके प्रेम-पथ मे डोलते॥

निज नारि प्रति व्यवहार वे, हैं ठीक उल्टा ही किये ।
हैं दांत हाथी के दिखाने को, न खाने के लिये ॥

(६०७)

ले साथ 'दिलवर जान' को, मोटर चढ़े, थेटर गये ।
थी गयी बीवीजान तव, ले वस्त्र-आभूषण नये ॥
जब मन हुआ, तब साथ रण्डी को लिये, घर पर गये ।
उसको नचाया ठाट से, निज नारि को दुख दे नये ॥

(६०८)

पण्डित, सुधारक और कवि से, है उन्हे नफरत बड़ी ।
है 'जी हजूरी' को सदा ही, भीड़ वह सम्मुख खड़ी ॥
सत्संग के दुश्मन बने, घर है कुमति के पाप के ।
हैं पुत्र अपनी मात के, सन्तान अपने वाप के ॥

(६०९)

था कुछ किया, उस जन्म मे, जिससे रईसी पा गये ।
जो कुछ इकट्ठा कर्म था, सो बैठ कर यों खा गये ॥
हंसते रहोगे चार दिन, फिर चाहिये रोना तुम्हें ।
अब के भविष्यत् जन्म मे, मानव नहीं होना तुम्हे ॥

५—गरीब महाजनों के बालक

(६१०)

संख्या गरीबो की बहुत, इस दीन भारतवर्ष में ।
उनके न बालक जी रहे, आनन्द अथवा हर्ष मे ॥
वे दीन इतने हो रहे, जो फीस दे सकते नही ।
कालेज से कोई सनद, इस भांति ले सकते नही ॥

(६११)

दूकार पर बैठे हुये, है दाल आटा बेचते।
अपनी अवस्था देख मनमे, आह ठंडी खेंचते॥
फेरी लगाते, घूमते, ले खोमचा बाजार मे।
उन बालकों की है सुनाई, कौनसे दरबार मे?

(६१२)

धन के बिना इस्कूल मे, जाते नहीं पढ़ते नहीं।
कल—कारखाने और कृषिके, क्षेत्र में पढ़ते नहीं॥
इस्टेशनों पर देखिये, बालक कुली के रूप में।
अब फूलना-फलना कहां, बालक पड़े, भय-कूप मे॥

(६१३)

उन दीन दुखिया बालको की, दशा सारी लेखिये।
फिर उन अमीरो के सुतों का, हाल सारा देखिये॥
यह भी गये, वह भी गये, दोनो गये हैं हाथ से।
धन, बालकों का था बचा, सो भी गया अब साथ से॥

(६१४)

जगदीश ! भारतवर्ष पर, अनुराग इतना कीजिये।
सब लीजिये, पर बालकों का, ध्यान हमको दीजिये॥
वे धन हमारे कोष के, वे बल हमारी देह के।
क्यो सूखतेही जा रहे, पौदे हमारे नेह के।

(६१५)

सब जाति का धन और वैभव, जाति की 'सन्तान' है।
सन्तान ही निज शक्ति है, सन्तान ही निज प्रान है॥

सन्तान सा हीरा गया, चुपके भला कैसे रहूं।
है ज्योति आंखो की वही, क्या और अब ज्यादा कहूं॥

(६१६)

बालक नही बालक निरे, वे है महा धन देश के।
विद्वान होगे पूर्ण वे, बनकर महाशय, देश के॥
है जन्म लेना भी सदा, सबको, यहां पर, हरघड़ी।
'रामाअनुग्रह' पुत्र हैं, मोती-जवाहर की लड़ी॥

६--हिन्दुओं के व्याह

(६१७)

कोई कहीं से व्याह लेकर, पुत्र का, जो आ गया।
आनन्द अनुचित रूप मे, सारे भवन मे छा गया॥
तैयारियां होने लगी, छह मास पहले से वहां।
हम हिन्दुओ की भांति, व्याहो की खुशी, होती कहां॥

(६१८)

जब व्याह करने योग्य, घर मे बालिका कोई हुई।
हम लोग को वह दीखती, विष-बेलि सी बोई हुई॥
है जन्म दिन से ही यहां, मातम मनाया जा रहा।
उस व्याह के आतंक द्वारा, दिवस ऐसा आ रहा॥

७--कन्या-अपमान

(६१९)

कन्या हुई पैदा जभी, मुख देख सब मुरझा गये।
सबको पकड़ने के लिये, यमदूत मानो आ गये॥

हैं पालते उस को नहीं, आनन्द मन में मानके।
शिक्षा उसे देते नही सन्तान अपनी जान के॥

(६२०)

खाती रहै जूँठन पड़ी, चहुंओर की झिड़की सहै।
है काम घर भर का करै, मन मार चुपकी हो रहै॥
नारी नही जीवित रहैं, तो फिर बताओ नर कहा।
दीवाल जो होगी नही, तो फिर खड़ा हो घर कहां॥

(६२१)

अब तो हजारों बालिकायें, बिक रही हर साल हैं।
जिनके भयानक शाप द्वारा, पड़ रहे दुष्काल हैं॥
अथवा उन्हे सौंपा, किसी, चाण्डाल बूढ़े जीव को।
बाबा कहे या बाप जी, वे क्या कहें उस-पीव को॥

(६२२)

जो रूप 'कन्या' का यहा, 'दुर्गा' समान कहा गया।
वह आज अत्याचार द्वारा, रक्त मध्य नहा गया॥
देखो न कन्या को, दुखाना, वरन् होगा नाश ही।
उसको न समझो व्यर्थ ही, उसको न मानो दास ही॥

८—दहेज की प्रथा

(६२३)

है सौख्य बालक-ब्याह मे, मन भर दहेज उड़ायंगे।
भारी बरात सजायंगे, तब द्वन्द खूब मचायंगे॥

है दुःख कन्या-व्याह मे, अब की दहेज चुकायंगे।
पायी हुई निज लूट सारी, लूट मे दे जायंगे॥

(६२४)

जो बालको के व्याह मे, रुपया गिनाना बन्द हो।
तो बालिका का व्याह कैसे, गले वाला फन्द हो॥
एक रोग रूपी घोरतर, हम हिन्दुओं का व्याह है।
उस के सुधार उपाय की, होती नहीं परवाह है॥

(६२५)

कल था बिगाड़ा भवन हमने, दूसरे का हर्ष में।
है, जा रहा सर्वस्व अपना, पलट कर, इस वर्ष मे॥
सुख दे कभी, दुख दे कभी, दोनो तरह, उत्ताप है।
सचमुच दहेजो की प्रथा, है नीचता या पाप है॥

(६२६)

हम छोड़ दे उस काम को, यह बुद्धि जो सरसायगी।
तो लाज, हिन्दू-जाति की, हरि-कृपा से, बच जयगी॥
हो बन्द पहिले, देश मे, बालक विवाहो की प्रथा।
फिर बन्द सर्व दहेज हो, तो कुशल होगी सर्वथा॥

(६२७)

जिसके पिता को लूट कर, कह कर 'बहू' घर जा रहे।
वह प्रेम कैसे करेगी, इस को न मन मे ला रहे॥
क्यो सास की श्रद्धा रहै, क्यो ससुर का विश्वास हो।
निज प्राणपति के संग, कैसे, सत्य हास्यविलास हो॥

(६२८)

हो व्याह में आनन्द, अथवा, कष्ट का बादल उठे।
वह व्याह है, वे आग जिससे, घर किसी का जल उठे॥
धिक्कार है उस व्याह को, जिसमें कुटुम्ब तबाह हो।
इस ओर कोरी 'वाह' हो, उस ओर केवल 'आह' हो॥

६—फिजूलखर्ची

(६२६)

हैं व्याह होते देश में, भूकम्प या आते यहाँ।
कितना समय बरबाद करके, धन लुटाते हैं वहाँ?
आभूषणों की और वस्त्रों की कथा कहते नही।
पर, व्यर्थ कितना खर्च, व्याहों मध्य हम सहते नही॥

(६३०)

हैं कागजो के फूल-फल, हैं कागजों की थालियाँ।
गमले बनाये कागजी, हैं कागजो की डालियाँ॥
यों फूंक डाले सैकड़ों, वह खेल क्षण में सो गया।
संसार मध्य 'रुआब' भारी, आपका क्या हो गया॥

(६३१)

जो बनें 'आतिशबाजियां'-तो धर्म-धन, दोनो गया।
चमड़े जलाये जायँगे, उत्पात भी होगा नया॥
लो चल रही हैं चरखियाँ जल उठा गेह किसान का।
है दृश्य सौम्य विवाह का, या दृश्य है शमसान का॥

(६३२)

दुर्गन्ध चहुं दिश छा गया, दूषित पवन भी कर दिया।
बारूद अपनी फूंक कर, वह ग्राम तमसे भर दिया॥
वरपर पड़ेगा पाप सब, दूषित पवन के ताप का।
आशीष लेनी थी जिन्हे, वे कर्म करते शाप का॥

१०—वेश्या-नृत्य

(६३३)

जब ब्याह पक्का होगया. तब मित्र-मंडल जुड़ गया।
ले चले वेश्या या नहीं, प्रस्ताव ये आया नया॥
फिर बहस गरमागरम होकर, मित्र लोगो ने कहा।
उस गांव वाले नाच विन, मनमे दुखी होंगे महा॥

(६३४)

बारात मे महफिल सजी, बैठे सभी सजधज किये।
श्रीमती मुन्नीजान भी, शोभित तबलची को लिये॥
दूल्हा निहारै प्रेमसे, देखे पिता भी चाव से।
हैं बाप जी के बाप भी, उसको निहारें भाव से॥

(६३५)

है एक माया रूप वेश्या, नाचती चहुं ओर मे।
वह एक ही तन बांधता, सारे नरो को, डोर मे॥
वरकी वही दादी लगी, माता बनी नारी हुई।
हा! एक वेश्या और सब संसार की प्यारी हुई॥

(६३६)

यदि भाग्य के संसर्ग से, वह गर्भधारण कर गयी।
कन्या हुई पैदा अगर, घटना घटी अघटित नयी॥
गाना-बजाना सीख कर, बाजार अब आबाद है।
लो देखलो ! श्रीमान का, संसार सब दामाद है॥

(६३७)

जो द्रव्य वेश्या को दिया, गौमांस उसका खायगी।
ले जायगी सर्वस्व लेकिन, कुछ नहीं दे जायगी॥
वह नाचती निज मौज में, तुमको समझती मूढ़ है।
हे दर्शको देखो जरा, वह नाच उसका गूढ़ है॥

(६३८)

फिर 'भांड़' आये सामने, केवल हँसाने के लिये।
हाँ आप समझें, या न समझे, व्यंग थे सबपर किये॥
ये भाँड़, रंडी, नट, नटी, बारूद, फुलवाड़ी सभी।
हो व्यर्थ करते खर्च कितना, आपने सोचा कभी?

(६३९)

ले जाइये वह मंडली, जो भजन गाती नीति के।
विद्वानगण बुलवाइये, व्याख्यान-दाता रीति के॥
दो दान गौशाला, अनाथों और विधवा-वर्ग को।
जाना तुम्हें है नरक में, या चाहते हो स्वर्ग को॥

११—प्रेत-पूजन

(६४०)

हिन्दू-घरोंकी नारियां, अब प्रेत-पूजक बन रहीं।
अब भूतही का भूत उनको, दीखता है सब कहीं॥
जो दर्द अथवा ज्वर हुआ, तो प्रेतकी बाधा हुई।
इस दीन हिन्दू-जाति मे, यह भी नयी व्याधा हुई॥

(६४१)

उस प्रेत-पूजन के लिये, बलिदान तक होता यहां।
अब 'कबर' पूजैं नारियां, है मर्द सब सोते वहां॥
सब देव-देवी छुट गये, अब भूत-प्रेत-मसान हैं।
सैयद, हठीले पीर से अब, बन रहे श्रीमान हैं॥

(६४२)

ये प्रेत-पूजन आपके घर, हो रहा है किस लिये।
मानव-शरीर प्रजेशने, तुमको दिया था इस लिये॥
सुर कोट हैं तैंतीस विधि, हरि और हर ईश्वर जहां।
भुइयां, मदार, मसान की, पूजा दिखाती है वहां॥

(६४३)

वे नारियाँ क्यों जा रही, दरगाह का मारग लिये।
तब कौन रोकेगा कि जब, पुत्रादि ब्रह्माने दिये?
जो भाग्यमे सुत है नहीं, दरगाह कैसे दे सके?
उन भोलियो से द्रव्य अथवा, 'सत्य' बेशक ले सके।

१२—अनमेल विवाह

(६४४)

अनमेल ब्याहों की बहुत, इस जात में भरमार है।
है दस बरस की बालिका, पर, साठ का भरतार है॥
पति को निरख कर बालिका, बाबा समझती है उसे।
वह मूक लड़की दोष देने, जायगी कहिये किसे॥

(६४५)

देखी गयी पत्नी बड़ी, पति देव छोटे है अभी।
चाची सरीखी नारि के, सम्मुख नहीं जाते कभी॥
हँसते सभी रहते सदा, अनमेल जोड़ी के लिये।
हम हिन्दुओ ने ब्याह मे, उत्पात क्या थोड़े किये॥

१३—बिवाह में गालियां

(६४६)

घर-घर यहां के ब्याह मे, अब गालियो का राज है।
कितने मनोहर काज मे, विध्वंस होती लाज है॥
उपदेश का गाना नहीं, हैं गीत गन्दे हा रहे।
है लाज नारी खो रहीं, हैं लाज नर भी खो रहे॥

(६४७)

उन गालियो को श्रवण करके, लोग हँसते चाव से।
आता मजा उनको बड़ा, जानें वही, किस भाव से॥
कच्ची उमर के बालकों में, ज्ञान होता भोग का।
कुछ भी इलाज न शेप है, इस दुःख वाले रोग का॥

१४--मेले-मदार

(६४८)

मेले मदारो मे कभी, जाओ न धक्को के लिये।
है दुष्ट लोगो ने अमित. उत्पात मेलो मे किये॥
सब को दिखाती 'हाथ' हो, पहिचान कुछ बाकी नही।
कोई 'विभूति' लुटा रहा, 'सुत' दे रहा कोई कहीं॥

(६४९)

पाखण्ड रच कर दुष्ट जन, बन जाँय 'साधू' मर्म के।
सर्वस्व लूटेंगे तुम्हारा, हैं निशाचर धर्म के॥
जो वस्तु कोई दे न उसको कभी खाना चाहिये।
मठ-मन्दिरो मे शिष्य बनने को न जाना चाहिये।

१५—बालकों के गहने

(६५०)

हम हिन्दुओ के बालको की, दुर्दशा अवलोकिये।
हम मानते भी हैं नही, चाहे सदा ही रोकिये॥
गहने बनाकर बालको को, है सजाते प्रेम से।
लेकिन न उनको रख सके, हम दृष्टि-भीतर क्षेम से॥

(६५१)

कलि-काल का है समय यह, जिसने बड़े कौतुक किये।
नर, बालको को मारते, दो-चार रुपयो के लिये॥

आभूषणो से बालको का स्वास्थ्य होता नष्ट है ।
दोनों तरह से रीति यह, हम हिन्दुओं की भ्रष्ट है ॥

१६—विनय

(६५२)

अध्याय यह अनरीतियो का, पूर्ण हो सकता नहीं ।
अज्ञान भारतवर्ष का, रहता स्वरचित सब कहीं ॥
यदि हम स्वयं सुधरें, भवन अपना समूल सुधार दे ।
'रासाअनुग्रह' जगत को तो मूढ़ता से तार दे ॥

(६५३)

कुछ धर्म की हैं रूढ़ियां, कुछ जाति की अनरीतियां ।
कुछ बन गयी हैं समय पाकर मूढ़ता की नीतियां ॥
जो पूर्व से होता रहा, आलोचना उसकी नहीं ।
उन पूर्व पुरुषों में भला, अज्ञान हो सकता कहीं ॥

(६५४)

जो लोग उन अनरीतियो पर. व्यंग करते हैं कभी ।
वे 'नासतिक' का परम पद, पाते सहज ही मे तभी ॥
केवल भवन दुशमन नहीं, सब गांव दुशमन हो गया ।
यो काम रीति-सुधार का, मन-बुद्धि ही मे सो गया ॥

(६५५)

भगवान! हमको वुद्धि दीजे. और बल भी दीजिये ।
संसार को अनरीतियों से, मुक्त कृपया कीजिये ॥

अनरीतियो के कोप से, जीवन हमारा भार है।
उन रूढ़ियो मे दीखता, कुछ भी न उत्तम सार है॥

——::०::——

द्वितीय परिच्छेद

सुधार की सम्मति
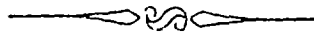
(६५६)

हे बालको ! हे बालिकाओ ! आप ही तैयार हों।
उनको निकालो घरो से, जो जो बुरे व्यवहार हो॥
जो वृद्ध-वृद्धा अपढ़ जन, अज्ञान वश बाधा करे।
सत्याग्रही बन आप, उनकी रोक से, मत कुछ डरे॥

(६५७)

यद्यपि कठिनता है बड़ी, हिन्दू-समाज—सुधार मे।
प्राचीन रीति विनाश मे, नूतन-विधान-विचार मे॥
तो भी उदासी त्याग कर, करते रहो अपनी क्रिया।
निशचारि अविद्या मरैगी, आ जायगी विद्या प्रिया॥

(६५८)

हिन्दू-समाज कुरीतियो का पूर्ण ठेकेदार है।
दुशमन 'समय' का बन गया, करता कुटिल व्यवहार है॥
हम है फकीर लकीर के, हैं चाल चलते भेड़ की।
है मूल सूखी जा रही, हम हिन्दुओ के पेड़ की॥

(६५९)

सारा बदन दूषित हुआ, देखो हमारी जाति का।
संसार मे दृष्टांत कोई है नही, इस भाँति का॥
क्या बाप-दादो का चलन, हम छोड़दे, अपयश लिये।
नाना अगर काने हुए, तो आप अन्धे हूजिये॥

(६६०)

हम लोग क्या थे ? क्या हुये, चैतन्यता जाती रही।
दुनियाँ हमारे ज्ञान की, गीता सदा गाती रही॥
सो आज कहती है हमे, बेकूफ काला आदमी।
सोचो निहारो, जांच लो, हममें हुई कितनी कमी॥

(६६१)

शिक्षित जनो मे भी नहीं है, एकता छाई हुई
तो, जायगी त्रुटि किस तरह जो है यहाँ, आई हुई॥
कवि और लेखक भी परस्पर, जल रहे विद्वेष मे।
छाई हुई है फूट ! हिन्दुस्तान नामक देश में॥

(६६२)

घरमे मनुज जितने रहें, उतनी प्रकृति की भिन्नता।
डूबे हुये अभिमान मे, सीखें सदा ही खिन्नता॥
निज दोपको देखें नहीं, आलोचना परकी करे।
हैं चिड़चिड़ाते रात-दिन, वे छटपटाते ही मरे॥

(६६३)

जब तक न होगी एकता, तब तक सुधार विलीन है।
जब तक नहीं अनुराग है, तब तक अवस्था दीन है॥

जब तक नहीं है नम्रता, तब तक बड़ाई है कहां।
अज्ञान है अभिमान है, विद्वेष ही छाया यहां॥

(६६४)

तकदीर मे कीड़े पड़े, तदबीर को हैजा हुआ।
आकाश को हैं देखते, है सामने गहरा कुआ॥
दिन मे 'रतौंधी' लग रही, पुतले बने हैं काठ के।
हम शब्द मानों बन गये, अज्ञान रूपी पाठ के॥

(६६५)

अध्यात्म-विद्या के सदन मे, अब अविद्या-राज है।
श्री भागवत के देश मे, अज्ञान का ही साज है॥
श्री राम जी की भूमि मे, मर्याद का संहार है।
बिगड़ा सकल व्यापार है, उलटा सकल व्यवहार है॥

(६६६)

हिन्दू-कुमारो ! आपही की, ओर हम सब देखते।
गुण और अवगुण आप अपने अंकमे अब देखते॥
पहिचानते घटकी सकल, अनरीतियां तब ध्यान से।
बचकर स्वयम्, हमको बचालेते विषम अज्ञान से॥

(६६७)

अवगुण रहेगे आप मे, तो कुछ न कर सकते यहां।
है शुद्ध होता वस्त्र कोई, मैलके द्वारा, कहां॥
जो लोग कहते किन्तु करते, हैं नहीं—वे मूढ़ हैं।
करना वही, कहना वही, सिद्धान्त सच्चे—गूढ़ हैं॥

(६६८)

ब्रह्मचर्य के दुश्मन बने, उनसे सुधार असार है।
जिस की नहीं इज्जत रही उसमें नहीं आधार है॥
कोई न मानेगा तुम्हारी बात, पर—उपदेश की।
अपना चरित्र सुधारिये, तब दवा देना क्लेश की॥

(६६९)

नवयुवक दल! जागो, उठो! पहिले सुधारो आपको।
घरको उबारोगे पुनः, पहिले उबारो, आपको॥
योंही न बकना चाहिये, पहिले निहारो, आपको।
पीछे समाज सुधारना, पहिले विचारो आपको॥

—:०:—

तृतीय परिच्छेद

सामयिक-प्रसंग

१७—यज्ञ-महिमा

(६७०)

मत भूल जाओ, यज्ञ की महिमा, अतीव अपार है।
श्री यज्ञ-कर्ता पर, प्रकृति का, सर्वदा ही प्यार है॥
सन्तोष पाते तत्व सब, हरि-यज्ञ के आचरण से।
उस यज्ञ द्वारा तृप्त होता, विश्व, अन्तः करण से॥

(६७१)

जिस यज्ञ द्वारा, इन्द्र का आसन मनुज तक पा सके।
जिस यज्ञ की महिमा न ब्रह्मा जी स्वयम् ही गा सके॥
जिस यज्ञ द्वारा, राम-लक्ष्मण-भरत जी आये यहाँ।
उस यज्ञ जैसे कर्म की, उपमा भला पाऊँ कहाँ॥

(६७२)

श्रीयज्ञ से, सब पाप मन के और तन के नष्ट हो।
श्रीयज्ञ से, प्रारब्ध वाले दूर भारी कष्ट हो॥
श्रीयज्ञ से नर, देव, किन्नर, यक्ष, सब सन्तुष्ट हो।
उस यज्ञ से, हम लोग क्यो, इस भांति, कहिये रुष्ट हों॥

(६७३)

कृषि-कर्म द्वारा, अन्न अब क्यो होरहा कम नित्य ही।
कारण वही-अब यज्ञ गौरव मे, नहीं है चित्त ही॥
कृषि-कर्म मे है-भूमि, सूरज, इन्द्र, शक्ति किसान भी।
हैं फल सभी लेते कृषक, पर, चाहते कल्यान भी॥

(६७४)

जो अंश देवों का रहा, सो यज्ञ द्वारा दीजिये।
फिर अन्न वाली अधिकता, प्रत्यक्ष फल मे लीजिये॥
जो एक बीघा दे रहा है, एक मन चावल यहाँ।
यदि यज्ञ हो प्रति वर्ष तो, हो आठ मन पैदा वहाँ॥

(६७५)

प्रति ग्राम मे प्रति वर्ष, दो दो यज्ञ करना चाहिये।
उत्पात दैविक को सहज, इस भांति, हरना चाहिये॥

उपयुक्त अवसर पर तभी, बरसात जल देगी यहां।
कीटादि कुछ भी हानि करने मे, न बल पावे वहां॥

(६७६)

प्रति शहर, भारतवर्ष का, प्रति वर्ष व्यय करता हरे।
गांजा, तमाखू, ब्याह, रण्डी, या अदालत ही करे॥
सौ लाख रुपये है उड़ाता वह बुराई के लिये।
दो लाख भी प्रति वर्ष, प्यारी यज्ञ को, किसने दिये॥

(६७७)

प्रति शहर में, प्रति वर्ष ही, दो लाखकी जो, याग हो।
ताऊन, हैजा, शीतला, इत्यादि का परित्याग हो॥
जलवायु सब अनुकूल हों, मरना न होय अकाल मे।
दो लाख रुपये दो लगा, हरियज्ञ मे हरसाल मे॥

(६७८)

जो यज्ञकी निन्दा करै, वह मूढ़ विस्वाबीस है।
जो यज्ञकी महिमा कहै, उसका सहायक ईश है॥
जो यज्ञ के प्रतिदान दे, वह कई गुन धन पायगा।
सौभाग्य शाली जीव ही, इस ओर जीवन लायगा॥

१८— सत्संग-महिमा

(६७९)

संसार में दारिद्रता सा, दुःख कोई भी नहीं।
संसार में सत्संग जैसा, सौख्य कोई भी नहीं॥

सत्संग वाली रगड़से दिल साफ शीशा कर लिया।
मुख देख कर निज आतमाका, हृदय सुखसे भर लिया॥

(६८०)

सत्संग पारसको परस, मन-लोह कंचन हो गया।
सत्संग-भानु-प्रकाशसे, सारा अंधेरा खो गया॥
सत्संग रूपी गली से, बंगला मिलै दिलदार का।
सत्संग रूपी नयन से, दर्शन मिलै दिलदार का॥

(६८१)

पीयूष मैला हो सके, कीचड़ समान कुसंगसे।
हो काग भी वर हंस जगमे, संत रूप सुसंगसे॥
मनको बनाना हो भला, तो संग सज्जनका करो।
सत्संग करने में न बाधा विघ्न आदिक से डरो॥

(६८२)

तप भूमि, तीर्थ, सुग्रन्थ, सज्जन, संत, गुरुके संगसे।
रंग जायगी मन-बुद्धि, संगति मध्य सुन्दर रंगसे॥
सत्संग मे सम्मान है, उत्थान है-कल्यान है।
सत्संग करनेसे सदां, चढ़ता निराला ज्ञान है॥

(६८३)

सत्संग की है धार गंगा-धार जैसी पावनी।
अघओघ, शोक, कुमोह, मद, सन्देह, छूत नशावनी॥
सत्संगसे कर्त्तव्यका लगता पता-सच जानिये।
सत्संग को ही, लक्ष अपनी, जीवनी का मानिये॥

१९--विद्या

(६८४)

हम भरत की संतान हैं, या भरत जैसा भाव है।
हम कर्म मे रत है बहुत, पर राम के प्रति चाव है॥
हम हैं भले, सब के लिये, रिपु भी बड़ाई दे रहे।
लय-योग में, विज्ञान में, सब नाम अपना ले रहे॥

(६८५)

जब सृष्टि-मध्य, अतीत के इतिहास मे हम अमर हैं।
तब वर्तमान-दुकाल मे भी, प्रेम गामी अजर है॥
है नाम सोने से लिखा, उस भूत काल पहाड़ मे।
होगी हमारी ही विजय, यह दीखता है आड़ मे॥

(६८६)

मत 'राज-भाषा' को पढ़ो, यह बात, हम कहते नहीं।
पर 'देव-वाणी' विमुख, हम सब लोग क्या रहते नहीं॥
वह कर्म हो, यह धर्म हो, वह भूमि, यह आकाश हो।
सारी-बनी दुनियां रहे, पर एक मे विश्वास हो॥

(६८७)

हों वेद-पाठी हम सभी, हों पथिक गीता-धर्म के।
मर्मज्ञ राम-चरित्र के, हों विज्ञ सच्चे कर्म के॥
इतिहास अपने पूर्व का, हम जान जावें, ध्यान मे।
जिससे न 'फैशन' फांस लेवे तुच्छता की शान में॥

(६८८)

हा शीश ऊपर वेद वह, हो सामने गीता खड़ी।
हो पीठ पीछे रामजी के, चरित की सुन्दर छड़ी॥
सब कर्म अर्पण हो हमारे, एक जनता के लिये।
जाऊँ चला श्रीराम–सम्मुख, दृष्टि निज ऊँची किये॥

(६८९)

पढ़ना वही, हे भाइयो, कर्त्तव्य का जो ज्ञान दे।
वह नीति सीखो सर्वदा, जो प्रेम को सन्मान दे॥
पढ़ना वही, जो पतन रोकै, और शुभ उत्थान दे।
लिखना वही, जो पाठकों को, ज्ञान दे, कल्यान दे॥

२०—दान

(६९०)

जो दान देवेंगे नही, वे पायंगे कैसे यहां।
जो बंक में डाला नही, जावै निकाला तो कहां॥
जो चाहते लेना यहां, तो सीखिये देना यहां।
इस हाथ दो, उस हाथ लो, सौदा नकद ऐसा कहां॥

(६९१)

जो जल पिलाते अन्य को, वे क्या पियासे मर सके।
जो वस्त्र देते शीत में, वह शीत से क्यो डर सके॥
जो अन्न देते सेर भर, सो कभी मन भर खांयगे।
जो एक पैसा देयगे, सो एक रुपया पांयगे॥

(६६२)

है स्वार्थ से भी दान देना, उचित इस संसार में।
दाता न पाता कष्ट कोई, अर्थ के व्यवहार में॥
जो दान देते दयावश, हरि सुरत उनकी लेयगे।
मूरख खड़े रह जांयगे, सो पांयगे, जो देयगे॥

२१—पुस्तकालय

(६६३)

है नेत्र बिन, जिस भांति मानव, व्यर्थ इस संसार में
सिन्दूर बिन, जिस भांति नारी, दुखित है आगार मे॥
बिन मार्ग जाने, भटकता, जैसे, पथिक निज राह मे।
बिन ज्ञान त्योंही जीव है, निस्सार, कर्म निवाह मे॥

(६६४)

पुस्तक समझिये सखा है, पुस्तक स्वयम् गुरुदेव है।
इन पुस्तको के रूप मे, वे शब्द-ब्रह्म स्वमेव है॥
वह पुस्तकालय ही हमारा, शुभ अखण्डित कोष है।
इन पुस्तकों से जा रहा, जाना हमारा होश है॥

(६६५)

जिस देश मे साहित्य का, आदर नहीं होता बड़ा।
गिरही पड़ेगा देश सो, कब तक रहेगा वह खड़ा॥
साहित्य वाला सूर्य विकसित, हो नहीं जिस जाति में।
बट्टा लगै, उस जाति की, उत्कर्ष-मूल-ख्याति में॥

(४९६)

संकेत-सूचक ग्रन्थ, कितनी बार जल-भुन जा चुके।
भूकम्प कितने, पुस्तकालय पर, हमारे आ चुके॥
लाखो करोड़ो पुस्तकों की, होलिकाएं हो गयीं।
शुभ कीर्त्तियां ऋषि और मुनियो की बहुत सी खोगयीं॥

(६९७)

तो भी हमारी पुस्तकों पर, विश्व लट्टू हो रहा।
अनुवाद करने के लिये, निज द्रव्य कितना खो रहा॥
है हिन्द को सम्मान जो कुछ, सो इसी साहित्य से।
उज्वल हमारा मुख हुआ, साहित्य के आदित्य से॥

(६९८)

विज्ञान हो, वेदान्त हो, या न्याय अथवा धर्म हो।
ज्योतिष, रमल या मंत्र हो, या तंत्र वाला कर्म हो॥
हो सृष्टि-प्रकरण देखना, या काव्य अनुपम जानना।
सब को पड़ेगा हिन्द के, साहित्य को गुरु मानना॥

(६९९)

पर, हिन्द मे निज ग्रंथ-प्रियता दीखती कुछ भी नहीं।
सच बात है, दीपक जहां, रहता अँधेरा भी वहीं॥
जन पांच अक्षर जानते, प्रत्येक एक हजार मे।
अब जान लीजैगा अवस्था, हिन्द की, संसार मे॥

(७००)

साहित्य अपना, किन्तु उससे लाभ लेवें दूसरे।
कैसी अवस्था है हमारी, हे हरे! हे हे हरे॥

धनवान पढ़ते ही नहीं, क्या नौकरी करनी उन्हें।
धनहीन पढ़ सकते नहीं, अवकाश कब मिलता इन्हे ॥

(७०१)

जब लक्ष शिक्षा का हुआ है, चार पैसे के लिये।
तब हिन्द का उत्कर्ष, हो सकता भला, किस के लिये ॥
है लक्ष शिक्षा का सदैव, विचारने के हेत में।
हम देखते हैं भारती को, नौकरी के खेत में ॥

(७०२)

है जर्मनी ने भी लिखा, निज वायुयान विधान में।
जापान ने माना वही, पनडुब्बियों के ज्ञान मे ॥
हैं यन्त्र के सब सूत्र, हिन्दुस्तान वाले, वेद में।
सुन कर जिसे, हम पड़ गये, आश्चर्य अथवा खेद मे ॥

(७०३)

जो जो हुआ, सो सो हुआ, अब सुरति आगे की करो।
सारे जवाहर लुट गये, अब तो हृदय मे कुछ डरो ॥
जीवन हमारा चल रहा, संसार में दो कृत्य से।
"रामाअनुग्रह" सच कहे, आदित्य से-साहित्य से ॥

(७०४)

प्रति शहर में हो, जिले वाला, पुस्तकालय ठाट से।
भर जाँय सब के हृदय, नूतन भावना के, पाठ से ॥
तहसील जितनी हों जिले में, सब में शाखाएं रहें।
तहसील के प्रति ग्राम में भी, पाठशालाएं रहें ॥

(७०५)

वे पुस्तकालय, रात्रि को शिक्षा करे, निःशुल्क ही।
इस भांति शिक्षित हो रहेगा, सहज मे सब मुल्क ही॥
है दान-शिक्षा का महा, ये मर्म क्यो भूले हुए।
सरकार के 'इस्कूल' पर हम लोग क्यो फूले हुए॥

(७०६)

जिस भवन भीतर एक जन भी, पठित रहता हो कहीं।
सब लोग उस घर के पढ़े, कर्त्तव्य उसका है वही॥
हर गांव मे हो रात्रि वाली, पाठशालाये वनी।
खुल जाँय सारे देश मे, व्यायाम शालाएं-घनी॥

(७०७)

जिस भांति कोढ़ी जीव, निज को पाप पूर्ण वखानता।
उपदंश वाला जीव ज्यो, निज को अभागा मानता॥
गो-घातकी को जिस तरह, चण्डाल हम सब मानते।
उस भांति अनपढ़ वन्धु को, विद्वान छोटा मानते॥

(७०८)

प्रत्येक ही विद्वान मन से, एक प्रण जा ठान ले।
दस मानवो को है पढ़ाना, हृदय मे यो मान ले॥
लेना न उन से एक पाई, समय निज देना उन्हे।
दस को पढ़ाने का सुयश, हो चाहिये लेना उन्हे॥

(७०९)

इस भांति सब नर पढ़ गये, दस वर्ष मे, इस देश के।
सब लोग रामायण पढ़ें तो, चिन्ह भागे क्लेश के॥

सब लोग फिर, निज नारि को भी, शिक्षिता कर जाँयगे।
'रामाअनुग्रह' देवियों के, हाथ 'गीता' पांयगे॥

(७१०)

नर-नारि भारतवर्ष के, पढ़ जाँय जल्दी नागरी।
जो दो महीने में, सहज ही, प्राप्त हो गुण आगरी॥
भगवान! क्या वे दिन पुनः, इस देश में दिखलाँयगे।
जब खेत में, चौपाइयों के साथ, हल चलवायंगे॥

२२—पंचायत-प्रथा

(७११)

प्रति ग्राम अथवा जाति अथवा, पन्थ का ही नाम लो।
पंचायतो से काम लो! पंचायतो से काम लो॥
पंचायतो की प्रथा द्वारा, कुशल रह सकती यहां।
है काम पैसे का वहां, है काम पैसे का वहां॥

(७१२)

इस्टाम्प का भी मूल्य दो, अर्जी लिखाई दीजिये।
सारे गवाहों के लिये, तलबी जमा सब कीजिये॥
तारीख पड़ती दस दफे, दौड़े फिरो टट्टू बने।
झगड़ा किया था एक, लेकिन, चढ़ गये झगड़े घने॥

(७१३)

निज ग्राम के लो पंच सज्जन, पांच कहलावें वही।
हो न्याय सच्चा, नाम तो, पंचायतों का हो सही॥

जो लोग मुख को देख कर, निज राय देते हैं—अहो।
उस को न कीजे पंच ही, सब लोग उससे हट रहो॥

(७१४)

अब आजकल है हो रहीं, पंचायते भी स्वार्थ की।
हैं पंच बन कर बैठते, गीदड़ निकम्मे पातकी॥
जो लोभ, ममता के लिये हैं, न्याय दम का घोटते।
यमराज उनकी जीभ, अंकुश के सहारे, मोड़ते॥

(७१५)

जो न्याय से मुख मोड़ता, तो प्रात मुख देखो नहीं।
हो धनी तो घर मे रहै, उसको तनिक लेखो नहीं॥
हट जाइये, उस ओर से, उसके निकट मत जाइये।
उसको निमन्त्रण-यज्ञ आदिक मे न टेर बुलाइये॥

(७१६)

जो पंच पाजी हो गया, उसको निकालो सभा से।
पंचायतो का काम होता, बहुत कड़वी दवा से॥
बस, न्याय का झगडा रहै, पंचायतो के सामने।
पंचायतो की प्रथा जारी, थी कराई राम ने॥

(७१७)

पंचायतों का हुक्म अब, सरकार ने भी दे दिया।
सरकार ने निज लाभ छोड़ा, काम अति उत्तम किया॥
है खर्च होता कुछ नही, जाता समय भी कुछ नहीं।
रविवार के दिन करो बैठक, बैठ जाओ मिल कहीं॥

(७१८)

प्रति जातिमे, प्रति वर्ण मे, प्रति धर्म-पंथ, समाज मे।
प्रति बहस में, प्रति रहस में, प्रत्येक अच्छे काज में॥
लो पूछ पंचो से सदा, कर्त्तव्य है सबका वही।
फिर हारने या जीतने से, लाज लगती है नहीं॥

२३—वर्ण-व्यवस्था

(७१९)

श्रीयुत विधाता ब्रह्म जी का, चार जाति-विधान है।
हैं चार विधिके कर्म सब, यह मर्म, सिद्ध महान है॥
ब्राह्मण विचारें और क्षत्री, सर्व-रक्षा-रत रहे।
वे वैश्य व्यापारी बने, पुनि शूद्र सेवा-व्रत गहें॥

(७२०)

थी धारणा विधिकी कहां, हों जाति मे उपजातियाँ।
थी रीत जो विधिकी बनी, उसमें घुसी अनरीतियाँ॥
सब विप्र मिल कर एक चौके, मध्य खावेंगे नहीं।
उन शुक्ल जी से मिश्र जी, अब सुख पावेंगे नहीं॥

(७२१)

हों सात विप्र 'कनौजिये' नौ लाइये चूल्हे वहां।
आडम्बरो के वेग से, फुर्सत विचारो को कहां॥
है ज्ञान अनुचित भेद का, या वंश की मुखियागरी।
द्विजवंश! तुममें भूलवाली, पूर्णता कितनी भरी॥

(७२२)

किस मूढ ने पाखण्ड द्वारा भेद इतने कर दिये।
शैतान के ही दूत ने दुर्भाव इतने भर दिये॥
बैठीं कुमारी बेटियॉ, द्विजजाति को हैं रो रही।
या छोड़ कर निज जाति को, पर जाति वाली हो रही॥

(७२३)

वे वश कितने मिट गये, या मिट रहे हैं नित्त ही।
दुख देखते है, पर पसीजै. कब हमारे चित्त ही॥
होती सभाएं नित्त ही, है पत्र कितने चल रहे।
पर, काम कब हो ऐक्यका, दिन जिन्दगी के ढल रहे॥

(७२४)

उन क्षत्रियो मे भी वही, उपजातियो की व्याधि है।
श्री चित्रगुप्त-सुवंश भीतर, भेद—भाव अगाध है॥
है वैश्य कुल मे भी वही, है शूद्र–दल मे भी वही।
सब ओर हिन्दू–जाति भीतर, हाय-तोबा हो रही॥

(७२५)

अब चार जाति प्रधान मे, उपजातियॉ सब लीन हो।
फिर भी विधाता चारमुख मे, पूर्ववत् आसीन हो॥
है चारही का बना रहना, कठिन इस संसार मे।
जो चार, चौरासी बनै, तो डूबिये मॅझधार मे॥

(७२६)

ये दाल-रोटी, व्याह–शादी, तुच्छ से व्यापार हैं॥
इन तुच्छ बातो के लिये, रूठे हुए सरकार हैं।

जब बुद्धि बाँटी थी गयी, तब आप थे सोते हुए ?
अबभी न खुलती आंख, दिन कितने गये रोते हुए ॥

(७२७)

थी बुद्धि, यदि संसार पर, श्रीमान की उड़ती ध्वजा।
थी शक्ति, यदि श्रुत-शत्रुओ को आप दे सकते सजा ॥
थी बात जो संसार मे, डंका बजाते ज्ञान का।
था धन्यवाद महान, पाते मार्ग यदि कल्यान का ॥

(७२८)

ओ हिन्दुओ ! वह सब तुम्हारे भाग्य ने पाया नही।
अब तक नजर मे ठीक मारग, आपको आया नहीं ॥
हां हां, उठो ! उसको निकालो, जात से बाहर करो।
हां हां लड़ो ! हरदम लड़ो ! लड़कर गिरो ! गिरकर मरो ॥

(७२९)

वंशावली लेना बना, छपवाइये उसको अभी।
तर जायंगे सब पूरबज, पा जायगे सीढ़ी सभी ॥
सब धर्म छोड़ो, कर्म छोड़ो, प्रेम पंथ मरोड़िये।
हां एकता को तोड़िये, शुभचिन्तवन को छोड़िये।

(७३०)

कुछ और देह पवित्रता का, ढोग अब फैलाइये।
हे काल-दूतो ! आइये ! अज्ञानियो को खाइये ॥
हां फिर पुकारो 'छूत' को रख, नाम मुख मे 'छूत' का।
है ठीक स्वर से बोलता, वह छूत चाचा भूतका ॥

(७३१)

यह देह, तत्वों से बनी, प्रति मनुज मे सब तत्व हैं।
हैं तत्व सब में एक ही, रखते समान-महत्व है॥
उस तत्व मे क्या तत्व है, जो तत्व ही जाना नही।
निज स्वार्थ का भी रूप अबतक, हाय! पहिचाना नही॥

(७३२)

तनका रगड़ना छोड़ दो, मन मे बढ़ाओ शक्तियां।
अब बुद्धि द्वारा कुछ दिखाओ, विश्व को नव भक्तियां॥
फ़ुर्सत न होगी कब तलक, उस जातिपांति-विचार से।
अब हाथ अपना खींचलो, संतान के संहार से॥

(७३३)

सब विप्र मिल कर एक हो, क्षत्री सकल मिल एक हो।
अब दूर सब अविवेक हो, अब कर्म फिर सविवेक हो॥
है चित्रगुप्त कुटुम्ब भीतर, बंधु बारह सोहते।
सब से प्रथम मिल आप जावैं, क्यों खड़े मुख जोहते॥

(७३४)

हे गुप्त करदो गुप्त अपनी, जाति के पाखण्ड को।
अब फूट ही को फोड़ दो कर दूर सर्व घमण्ड को॥
अब खानपान विवाह-शादी जाति भर मे कीजिये।
डरिये नही! उठिये अभी, या शाप मेरा लीजिये॥

(७३५)

भगवान वह दिन शीघ्र लाओ, जाति देखूं चार ही।
उपजातियाँ हो लीन सब, रह जाय केवल सार ही॥

मत-पंथ सिर्फ विचार हैं, उनके लिये लड़ना नहीं।
मद, मोह के अभिमान से, उस ताड़ पर चढ़ना नहीं॥

२४--अछूतोद्धार

(७३६)

देखो अछूतों की दशा, अपमान द्वारा खिन्न है।
है आप मस्तक रूप तो, पग किस तरह से भिन्न हैं॥
जो शीस के बिन, कार्य चलता, चरण का बिलकुल नहीं।
तो चरण द्वारा हो रहा है, काम मस्तक का वही॥

(७३७)

अपमान करते आप उनका, गालियाँ भी दे रहे।
जल भी न भरने दें उन्हे, यों पाप क्यो कर ले रहे॥
वे जा रहे है, हिन्दुओ को, छोड़ ईसा—पंथ मे।
झुक-झुक करेंगे आप भी, उनको सलामी अन्त मे॥

(७३८)

सब लोग छूते हैं चरण, इस मर्म पर तो ध्यान दो।
भगवान के हैं चरण वे, सम्मान दो! सम्मान दो॥
जो धीर-वीर स्वभाव हैं, तो मार्ग रक्षा का गहो।
सब हिन्दुओं की विश्वमाता, के चरण मे भक्ति हो॥

(७३९)

हे विप्र! अग्रज हो बने, तो अग्रपद हो जाइये।
सब जातियों मे एकता, कर्तव्य द्वारा लाइये॥

हम हिन्दुओं में त्रुटि रहै, जो नीति के व्यवहार में।
तो आपका यश शेष कैसे, रहेगा, संसार मे॥

(७४०)

जो काम वह सब त्याग दें, द्विज-जाति के उत्पात से।
तो काम क्या चल जायगा, सबके घरों का प्रात से॥
सेवा किये मेवा मिले, सिद्धान्त मिथ्या हो रहा।
अन्त्यज बिलखता है पड़ा, दिन-रात नीरव रो रहा॥

(७४१)

रक्षा करो ! ऐ ब्राह्मणो ! भगवान के तुम माथ हो।
रक्षा करो ! हे क्षत्रियो ! भगवान् के तुम हाथ हो॥
अनुदारता को छोड़कर, उनपर कृपा अब कीजिये।
हे अन्नदाता ! दान उसको, दया का अब दीजिये॥

(७४२)

हो एक पांति अछूत की, जब ब्याह आवै भवन में।
जब यज्ञ होवै विष्णु की, उनको खिलाओ सदन मे॥
क्यों पारटी देते फिरो, उन अफसरों को व्यर्थ ही।
अन्त्यज खिलाओ प्रेम से, हो प्राप्त जिससे अर्थ ही॥

(७४३)

हैं वैश्य जो श्रीमान तो, व्यापार सबसे कीजिये।
जब ले रहे सेवा कड़ी, तब पूर्ण बदला दीजियें॥
जो वे गरीब महान हों, तो आप ही का दोष है।
क्या बन्धु छोटे के लिये, बिलकुल न खुलता कोष है॥

(७४४)

सेवा कराओ किन्तु, बदले मे उन्हे कुछ प्यार दो।
खुद सँभल जाओ और अन्त्यज-वर्ण शीघ्र सुधार दो॥
दो चार आने से मनुज का, हृदय भर सकता नहीं।
सम्मान और सहायता बिन, 'दास' डर सकता नहीं॥

(७४५)

शिक्षा नहीं उनको मिले, निज रूप को जाना नहीं।
हैं धन्य! तो भी कर्म अपना, त्यागना ठाना नहीं॥
अन्त्यज अगर पड़ जायगा, ईसाइयो के फन्द मे।
धक्का लगेगा हिन्दुओ, तव आपके आनन्द मे॥

(७४६)

जिस भांति, छोटे बन्धु के, प्रति, आपका कर्तव्य है।
उस भांति, अपनाना उन्हे, अत्यन्त शुभ होतव्य है॥
जिस भांति चरणों के बिना, सब कर्म रुक सा जायगा।
उस भांति शूद्र, अछूत बिन, उन्नत न भारत पायगा॥

(७४७)

जो छू नही उनको सको, तो बोल मीठे वचन दो।
सम्मान दो, चाहे उन्हे, निज निकट मे आसन न दो॥
जल आदि का जो कष्ट हो, सो दूर करना चाहिये।
उन भाइयों को मार कर, खुद भी न मरना चाहिये॥

(७४८)

उनके मदरसे खोलदो, दो मासटर निज जाति से ।
उनके जलाशय दो बना, न्यौता करो सब भांति से ॥
उनके यहां पंचायतो की, प्रथा जारी कीजिये ।
है कर्म उनका उच्च ही, अनुराग अपना दीजिये ॥
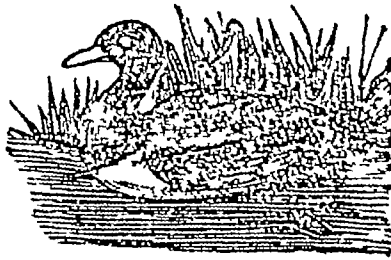
पञ्चम अध्याय

प्रथम परिच्छेद — वालोपदेश

द्वितीय परिच्छेद — ब्रह्मचर्य-चर्चा

पंचमोध्याय

पहिला परिच्छेद

बालोपदेश

(७४९)

सो जाइये, दस बजे तक, मुख-हाथ धोकर रात में।
जग जाइये, जब चार बजने का समय हो प्रात में॥
मन को लगा कर ईशपद में, पुत्र! सोना चाहिये।
सोते समय कुविचार मन से, दूर होना चाहिये॥

(७५०)

फिर चारपाई त्याग कर, धरणी निरख, झुक जाइये।
जो है क्षमा की जननि, उसको, नमस्कार जनाइये॥
पुनि, एक लोटा जल कुएँ से, खींच पीना चाहिये।
वह क्षीरसागर-तुल्य है, सौ वर्ष जीना चाहिये॥

(७५१)

शौचादि जाकर कीजिये सुस्नान, नंगे बदन से।
दातून द्वारा, मैल पहिले दूर-कर लो! रदन से॥
जो राल मुख में छा रही, वह दूर करना चाहिये।
फिर, साफ देशी वस्त्र, अपने तन पहरना चाहिये।

(७५२)

तब, बैठ कर एकान्त मे, गायत्रि युत सन्ध्या करो।
पुनि पाठ रामायण करो, उपदेश सब मन मे धरो॥
पश्चात गीता भी पढ़ो, जो ज्ञान का दीपक सहा।
ये ज्ञान है, वह कर्म है, यों साधु सन्तों ने कहा॥

(७५३)

थोड़ा 'हवन' भी चाहिये, जिससे पवन अनुकूल हो।
तन और मन पर, आक्रमणकारी न कोई शूल हो॥
लो! वे दिवाकर आ गये उनको 'नमस्ते' कीजिये।
जल भी चढ़ाओ, प्रेम से, रघुवंश से वर लीजिये॥

(७५४)

अपने भवन में अन्य कोई, देव-देवी हो न हो।
पर, ब्रह्मचर्य-दिनेश श्री, हनुमान जी सविधान हों॥
व्यायाम द्वारा, कुपच अपने, पेट का, नितप्रति हरो।
श्री सूर्य, पृथ्वी और हनुमत लाल की पूजा करो॥

(७७५)

जिस भवन में हनुमान जी की, मूर्ति शोभित हो नहीं।
जिस भवन भीतर, श्रीमती-'तुलसी' सुरोपित हो नहीं॥
जिस भवन में आतिथ्य मिलता, साधु-सन्तों को नहीं।
उस भवन मे सुरगण नहीं, औघड़ सदा रहते वहीं॥

(७५६)

यों प्रात का कर्त्तव्य कर, निज भवन-भीतर जाइये।
माता-पिता-गुरुदेव को, निज शीस नित्य झुकाइये॥

आशीष लीजे हर्ष से, कल्याणकारी कर्म है।
हे बालको! यों वेद कहता, आप का निज धर्म है॥

(७५७)

जो कुछ मिले, सन्तोष से भोजन वही कर जाइये।
ये नमक कम है, वह मसाला कम, न झगड़ा लाइये॥
कुछ पेट खाला ही रहे, भर पेट खाना, दोष है।
मत अन्न छोड़ो सामने, वह अन्न करता रोष है॥

(७५८)

सन्ध्या-समय कुछ खेलने को जाइये मैदान में।
मत खेलने में कीजिये, झगड़ा कभी अभिमान में॥
हाँ, खेलना है खेलिये, पर, मेल भी जावे नहीं।
है मेल वाला खेल यह, मन-मैल भी लावे नहीं॥

(७५९)

सब रोग तन के दूर होंगे, कर्म दो ही कीजिये।
बस, भूख से कम खाइये, प्रातः समय जल पीजिये॥
व्यायाम करना चाहिये, निज वीर्य की रक्षा करो।
सहयोगियो को भी इसी, व्यवहार की शिक्षा करो॥

(७६०)

जो लोग पीते हैं नशा, उन के निकट मत बैठिये।
हाँ, भूल कर भी उन नशों के, भवन में मत पैठिये॥
मारे नशों से हानि है, तन और धन की, रोज ही।
उन्नति रुकेगी आप की, बढ़ती न बल की ओज ही॥

(७६१)

जिन बालको का चरित अच्छा, हो न, सच्चे नेम का।
उन से न बोलो, काम क्या है ? दुष्ट जन से, प्रेम का॥
जो वीरता को तोड़ते, जो ब्रह्मचर्य्य बिगाड़ते।
वे शत्रु बन कर आप को, विष ही पिलाकर मारते॥

(७६२)

तन को न सुन्दर कीजिये, सौन्दर्य मन का सत्य है।
सौन्दर्य तन का झूठ है, सौन्दर्य मन का नित्य है॥
सौन्दर्य तन का देखते, जो लोग अन्धे हो गये।
सौन्दर्य मन का देखते, जो लोग जड़ता खो गये॥

(७६३)

लो अवगुणो को ही प्रथम, पहिचान लो, फिर त्याग दो।
पुनि सद्गुणो को जान लो, हृद्धाम मे अनुराग दो॥
लड़ते रहो उन अवगुणो के, आगमन की, रोक मे।
बढ़ते रहो उन सद्गुणो के, खीचने की, झोक मे॥

(७६४)

दस नाम अवगुण के सुनो, फिर रूप भी उनके सुनो।
दस नाम सद्गुण के सुनो, फिर रूप भी उनके गुनो॥
दस मित्र हैं, दस शत्रु हैं, दस काल वाले शीस हैं।
दस कुम्भ हैं पीयूष के, हो प्राप्त जिन से ईश हैं॥

(७६५)

है प्रथम अवगुण 'काम' का, सब अवगुणो का बाप है।
सब तरह सत्यानाश कारी, काम भीतर ताप है॥

वह सांप काला है सखा, उसके निकट मत जाइये।
पच्चीस वर्षों तक कभी, वह सर्प मत उर लाइये॥

(७६६)

है 'क्रोध' अवगुण दूसरा, है सिंह जैसे रूप का।
है मार्ग दुख का दूसरा, सब भांति अवनति कूपका॥
हो क्रोध जिसके हृदय मे, वह शान्ति कैसे पायगा।
बस, क्रोध वाली आगसे, क्रोधी स्वयम् जल जायगा॥

(७६७)

है 'लोभ' अवगुण तीसरा, लालच भयानक जाल है।
रोता सदा है लालची, लालच चलन का काल है॥
नमकीन-मीठे-चटपटे, सब स्वाद लालच रूप है।
भीतर महा दुख रूप है, बाहर सुदिव्य अनूप है॥

(७६८)

है 'मोह' चौथा पाप जगमें, मोहसे सन्ताप है।
परतंत्रता के लिये देखो, मोह रस्सी आप है॥
हरिसे छुड़ा कर मोह माया-मध्य मद से डालता।
ये मोह भी तो नशा है, है मूढ़ उसको पालता॥

(७६९)

है पांचवा 'मद' नाम का, खल विश्व भीतर घूमता।
चोटी सदा ही ताड़ की, वह कूद कर है चूमता॥
गिर ही पड़ेगा, जीव जो, चढ़ जायगा बेतौर से।
मद है नशा भारी, लखो! उसको हृदय में, गौर से॥

(७७०)

है 'ईरषा' नागिन महा, छठवां भयानक दोष है।
बढ़ता सदा ही ईरषा वश, हृदय भीतर रोष है॥
लख दूसरों की शक्तियां, उनकी बुराई मत करो।
खुद शक्ति से सम्पन्न होकर, तुच्छता अपनी हरो॥

(७७१)

है सातवां अवगुण प्रबल, है नाम 'चिन्ता' का अहो।
चिन्ता नही है बालको, उसको चिता ही तुम कहो॥
चिन्ता जला कर रक्त सारा, और बल को खायगी।
उड़ जायगी सब ज्योति जीवन, खाक ही रह जायगी॥

(७७२)

है आठवां अघ 'कपट' का, जो झूठका आगार है।
जो कपट करता सो बनै, छल-छिद्रका भण्डार है॥
छलकपट वाला जगत में, बदनाम होता है बड़ा।
कपटी नहीं सुख पायगा, दुख सामने उसके खड़ा॥

(७७३)

है 'जल्दबाजी' दोष भारी, और शैतानी क्रिया।
था जल्दबाजों ने कभी, कोई इलाका, जय किया॥
जो जल्द सुनते बात है, जो जल्द कहते बात हैं।
इन कार्य्य दोनों से जगत मे, हो रहे, उत्पात हैं॥

(७७४)

है दशम अवगुण 'नशेवाला' नाश करता बदन का।
ये नशा मैनेजर बना, सब पातको के सदन का॥

जिसने नशे में मस्त हो, कर्त्तव्य निज जाना नहीं ।
उसको 'मनुज' समझो नहीं, उसके निकट आना नहीं ॥

(७७५)

ये पाप दस हैं नाम 'अवगुण' ख्याति है, संसार में ।
हैं शक्तिशाली भी बड़े हैं कुशल निज व्यापार में ॥
पाकर जरासी राह क्रमशः, घुस पड़े, हृद्धाम में ।
हैं कुशल निशिचर पातकी,परघातकी, निज काम में ॥

(७७६)

अवलोकिये निज प्रकृति को, हैं कौन से अवगुण तुम्हें ।
छोटा न उनको जानना, पहिचानना खोटा उन्हें ॥
दिन-रात कीजे यत्न ये, जिससे बने जड़हीन वे ।
पुरुषार्थ माना जायगा, हों सब तरह से चीन वे ॥

(७७७)

गुण-गान अब होगा यहां, उन सद्गुणों के कामका ।
डंका बजै दिन-रात जग में, जिन यशों के नामका ॥
अवगुण निकालो यत्न से, सद्गुण बुलाओ यत्नसे ।
यह वदनरूपीभवन भरिये; गुण स्वरूपी रत्न से ॥

(७७८)

है प्रथम 'शांति' स्वरूप-सुन्दर सगुण रूप, महेश का ।
है शांति-मध्य निवास अपने प्राणधन हृदयेश का ॥
है शांति जीवन-ज्योति-जगमें और जननी धीर की ।
है शान्ति सुन्दर दवा मनकी, बेकली की, पीर की ॥

(७७९)

है 'ज्ञान' गुण वह दूसरा, जिसका उजाला-रवि बना ।
हटता अंधेरा हृदय-घटका, छा रहा है जो घना ॥
हम कौन हैं, हरि कौन हैं, जग वस्तु क्या-सो ज्ञान है ?
बस, ज्ञान ही मे रम रहा, विद्वान उनका प्रान है ॥

(७८०)

है 'सत्य' का गुण तीसरा, जिससे सफलता प्राप्त हो ।
जिससे मनुजता प्राप्त हो, शुभ कीर्ति जिससे व्याप्त हो ॥
जो सत्यवाला सूत्र, अपने हाथमे, पकड़े हुए ।
वे सामने जाते सभी के, शान मे अकड़े हुए ॥

(७८१)

है 'प्रेम' चौथा सगुण ईश्वर, विश्व जिसमे लीन है ।
है प्रेम-सागर-मध्य मानव लीन मानों मीन है ॥
वह काम कोई भी नहीं जो प्रेम से भी, दूर हो ।
जालिम कसाई क्रूर का भी हृदय उससे, चूर हो ॥

(७८२)

है पांचवां गुण 'क्षमा' नामक, सीखना नित चाहिये ।
करदो क्षमा निजको प्रथम, निज पर न गुस्सा लाइये ॥
फिर क्षमा करदो सकल को, क्षमता क्षमा में है बड़ी ।
जिसमें क्षमा की साधना, उसके निकट है 'जय' खडी ॥

(७८३)

है 'धैर्य' छठवां प्रबल गुण सर्वत्र घबराहट हरै ।
जो धैर्यधारी हो गया, वह कौन से दुख से डरै ॥

धर धीर बैठो शान्ति से बस, ज्ञान द्वारा, क्षमा हो ।
तो भारती भी हो सखी, प्यारी तुम्हारी रमा हो॥

(७८४)

है सातवां गुण 'दया' वाला, याद रखिये सर्वदा ।
है दया हरि की याद ही, है दया अतुलित, सम्पदा॥
जिसमें दया का गुण वसै, उसपर दया सबही करैं ।
उस दयावान सुजान से, यमराज भी दिल मे डरैं॥

(७८५)

है आठवां गुण बहुत उत्तम, शुद्ध सत्य 'विचार' का ।
है सूत्र बलप्रद विश्व के, सब विषय के व्यवहार का॥
यह जगत पानी और पयके, मेलवाला खेल है ।
सुविचार है तो खेल है, अविचार है तो जेल है॥

(७८६)

'एकाग्रता' है नवम गुण, जो सकल गुण की जान है ।
एकाग्रता बिन सीखना कुछ भी, निरा अभिमान है॥
एकाग्र होना चाहिये, है तैरना भव-सिन्धु सा ।
एकाग्रता से सिन्धु लगता, एक छोटा बिन्दु सा॥

(७८७)

है दशम उत्तम गुण महा, अत्यन्त 'निश्चय' रूप में ।
जो भय न होने दे, अगर, गिरजाय, साधक, कूप में॥
निश्चय भरोसा कीजिये, गुणवान होना है हमें ।
निश्चय करो, अवगुण सकल सर्वांश खोना है हमे॥

(७८८)

इसे गुण यही है बालको, पहिचान लो, अनुराग से।
जो अवगुणों मे लीन हैं, वे देखिये, हैं काग से॥
जो लोग, गुण को सीखते, वे हंस जैसे शुद्ध हैं।
गुण सीख करही, पूज्य जग मे, अमर गौतम बुद्ध हैं॥

(७८९)

गुण-गान होता, गुणी का यश भी अमरता पा रहा।
श्रीरामजी का नाम अब तक, विश्व गुण-वश गा रहा॥
गुणवान की जय है सदा, गुणवान ही सुर-रूप है।
गुणवान को सुख प्रद बनै, यद्यपि जगत भवकूप है॥

(७९०)

हे बालको! हे प्राणप्रिय! हे आश रूपी चन्द्रमा।
इस दीन भारत-जननि-मुख पर, मत लगाना कालिमा॥
गुणवीर बनना पुत्रवर, बस, काम करना धर्म का।
अवसर न देना तुम किसी को, भी शिकायत कर्म का॥

दूसरा परिच्छेद

ब्रह्मचर्य-चर्चा

(७९१)

जब देश-उन्नति का समय, होता निकट संसार में।
होता उदय रवि ब्रह्मचर्य्य, सवत्र पारावार में॥

जब देश अवनित का समय, माता-विधाता चक्रसे।
व्यभिचार मय होता जगत, तब कालकी गति वक्रसे ॥

(७६२)

है ब्रह्मचर्य महान नेता, सर्व अंग सुधार का।
है ब्रह्मचर्य विशेष मारग, जगत बेड़ा पार का ॥
वह कार्य कोई है नहीं, जो ब्रह्मचर्य न कर सके।
वह भय न कोई भी कहीं, जो ब्रह्मचारी डर सके ॥

(७६३)

एकाग्र मन होता नहीं, जो ब्रह्मचर्य न पास हो।
हो बुद्धि कैसे शुद्ध, जो, व्यभिचार का अभ्यास हो ॥
वह ब्रह्म पा सकता नहीं, जो ब्रह्मचर्य न पा सका।
वह ज्ञान ला सकता नहीं, जो ब्रह्मचर्य न ला सका ॥

(७६४)

है अष्ट विधि व्यभिचार वह, जो नीचता सिखला रहा।
निज रूप की सुधि को भुला, पर रूप पर मचला रहा ॥
मन मोह जाता वदन पर, जो मैल उसके हाथ का।
मन से बना तन जानिये, सिद्धान्त यह परमार्थ का ॥

(७६५)

इन आठ रोगों की दवा है, एक ही सो, जानिये।
मत नेत्र ऊंचे कर किसी भी, नारि को पहिचानिये ॥
जब नारियों का दर्श करना, बन्द होगा आप से।
तब मन बचेगा, आठ विधि के, भोग के, सन्ताप से ॥

(७९६)

हर जिले भीतर खोल दो, आश्रम, विमल ब्रह्मचर्य के।
हों चित्त आकर्षित तुरत, इस ओर नेता वर्य के॥
प्रत्येक शिशु पच्चीस बरसों तक, रहें उस ओर ही।
देखे न नारी-जगत को, बस, काट डालो डोर ही॥

(७९७)

प्रत्येक आश्रम-मध्य, मन्दिर एक हो, हनुमान का।
विश्वास छात्रों मे भरो, बजरङ्ग वाले प्रान का॥
हनुमान जी हैं अमर व्यापक, और रक्षक हैं बड़े।
हैं सन्त, सद्गुरु प्रेम मय, देखो जहां, प्रभु हैं खड़े॥

(७९८)

ब्रत-टेक मंगलवार का, दो नमक उस दिन छोड़ ही।
पकड़ो चरण हनुमान का, गति दीजिये निज मोड़ ही॥
उन आश्रमो में देववाणी, और इंगलिश चाहिये।
फिर नागरी गुण आगरी को भी वहां पहुंचाइये॥

(७९९)

हों बी० ए० इंगलिश मे सभी, हो वेदपाठी भी सभी।
हो चित्त हिन्दी में लगा, त्यागन न हो उसका कभी॥
हठयोग भी हो साथ में, कुछ सांख्य का आदर्श हो।
शुभ ब्रह्मचारी-चरण का, दर्शन मिलै, तब हर्ष हो॥

(८००)

गुरुकुल खुलें! ऋषिकुल खुलें! आश्रम खुलें ब्रह्मचर्य के।
खुल जायं हे भगवान अब तो, नेत्र नेता वर्य के॥

प्रति जिले में ब्रह्मचर्य आश्रम मध्य शिक्षालय खुलें।
इम हिन्दुओ के वंश वाले वृक्ष फिर फूले-फले॥

(८०१)

जिस ब्रह्मचर्य्य-विधान से, श्रीराम जी विजयी हुये।
जिस ब्रह्मचर्य्यविरोध से. लंकेश से, हत श्री हुये॥
श्री लक्षमण ने बध किया, घननाद सा माया-धनी।
उस ब्रह्मचर्य्य स्वरूप की, महिमा स्वयं अनुपम बनी॥

(८०२)

कर मे कुठार सँभाल कर, संसार सर्व सुधार को।
अभिमान-रत नृप क्षत्रियो के, गर्म वाण प्रहार को॥
जब बाल ब्रह्मचारी महीश्वर, परसुधर थे डट गये।
तब एक के द्वारा, हजारों सैन्य युत नृप, कट गये॥

(८०३)

अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की, रतिनाथ को माना नहीं।
जीते असंख्य विपक्ष वाले, हार को जाना नहीं॥
श्रीकृष्ण जी से भी लड़े, निज मृत्यु खुद कहकर, मरे।
श्री भीष्म ब्रह्मचारी हुये, सर-सेज पर सोये, हरे॥

(८०४)

भारी भरोसा ब्रह्मचर्य्य विधान का मन में लिया।
युवराज अंगद ने, दशानन-सभा-सम्मुख प्रण किया॥
दरबार में, कोई चरण उनका उठा पाया नहीं।
ब्रह्मचर्य्य-महिमा से सदा, सम्मान मिलता सब कहीं॥

(८०५)

आचार्य्य शंकरदेव ने ब्रह्मचर्य्य को उर धार के।
अद्वैत की जय बोल दी, सब द्वैत दुख को मार के।
आचार्य्य दिग्विजयी हुये, जड़वाद का तोड़ा किला।
उस ब्रह्मचर्य्यविधान से, सम्मान क्या थोड़ा मिला?

(८०६)

श्रीमान दायानन्द जी, ब्रह्मचर्य्य से श्रीमान हो।
विद्या-विलास-विकास कर, पूजित हुये धीमान हो॥
भय हीन होकर यतीवर, डंका बजाता ही गया।
कारण यही-ब्रह्मचर्य्य की, उन पर रही सचमुच दया॥

(८०७)

बच्चे! यही संसार जो, जीवन-मरण का धाम है।
माना कि तुमने अब लिया, कुछ दूसरा ही नाम है॥
लेकिन असम्भव है नहीं, प्रह्लाद, अर्जुन आप हों।
ब्रह्मचर्य्य बिन प्रकटे नहीं, सहते पड़े उत्ताप हों॥

(८०८)

तुम मे छिपे हैं भीष्म, अर्जुन, भीम, प्रह्लादिक बली।
तुम आपको भूले हुये, तुमको छलै रतिपति छली॥
तुम मे छिपे शंकर, दयानँद और अंगद वीर से।
तुम में छिपे श्री परसुराम-समान, अति गम्भीर से॥

(८०९)

माना की तुम वह कुछ नहीं, तो भी मनुज के रूप हो।
नर-रूप से, संसार के, सब जीव ऊपर, भूप हो॥

तुम आतमा हो, पुत्र हो, परमातमा के, मनुज हो
प्रह्लाद खुद यदि तुम नहीं, लेकिन उन्हीं के अनुज हो॥

(८१०)

ब्रह्मचर्य्य व्रत को धार लो, देखो कि तुम ही हो सभी।
तुम धन्य हो संसार में, तुम तुच्छ हो सकते कभी?
जो काम करना हो करो, वाधा न कोई डट सके।
ब्रह्मचर्य्य के अनुराग से, वह काल भी तो हट सके?

(८११)

आनन्द संयम मे मिला, क्षय, वीर्य-पात कुरोग मे।
सुख ब्रह्मचर्य स्वरूप में, दुख क्षणिक माया-भोग में॥
आनन्द है, विश्वातमा के प्रेम वाले योग में।
लग जाइये, अब ब्रह्मचर्य-प्रचार के उद्योग में॥

(८१२)

केवल न लड़के ब्रह्मचर्य-विधान मे आगे बढ़ें।
उन लड़कियों के झुण्ड भी ब्रह्मचारिणी वनकर, कढ़ें॥
ब्रह्मचर्य-रत माता नहीं, विद्या न उसके पास हो।
व्यभिचार-रत हो मूर्ख वन, सन्तान क्यो न उदास हो॥

(८१३)

यदि चाहते बच्चे तुम्हारे, ब्रह्मचर्य-निधान हो।
संस्कृत व इंगलिश आदि विद्या मध्य वे विद्वान हों॥
तो लड़कियों पर नेह हो, उनका सुधार प्रधान हो।
माता अगर 'माता' नहीं, संतान क्यो श्रीमान हो?

षष्ठ अध्याय

प्रथम परिच्छेद—किसान क्लेश।

द्वितीय परिच्छेद—गो-ब्राह्मण।

तृतीय परिच्छेद—आज्ञा और उपसंहार।
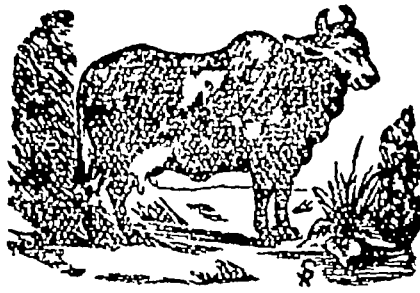
षष्ठ अध्याय

प्रथम परिच्छेद

किसान-क्लेश
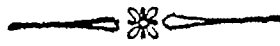
(८१४)

जब तक कृषक-दुख है यहां, जब तक बना गोवध यहां।
तब तक अभागे विश्व की, उन्नति कहां, उन्नति कहाँ॥
हा! गाय घर में रो रही, रोते कृषक बाहर खड़े।
भूगोल! तेरे भाग्य में, दुख के कठिन अक्षर पड़े॥

(८१५)

संसार में 'शिव' रूप है, जिसको 'कृषक' सब जानते।
संसार में वह 'शक्ति' है, 'गौ' नाम जिसका मानते॥
मा-बाप वे हैं सृष्टि के, समझो, सजग हो ध्यान में।
माता-पिता को खागये, हम पुत्र, निज अज्ञान में॥

(८१६)

दोनों किसी के शत्रु हैं? बोलो—किसी के काल हैं।
जीवन हुआ जंजाल है, हम नर नहीं हैं—व्याल हैं॥
अन्धे हुये नेता सभी, अन्धे हुये राजा सभी।
माता-पिता के घातको! उन्नति नहीं होगी कभी॥

(८१७)

जीवातमा का अन्नदाता, है कृषक के वेश में।
फाँसी लगा दी है उन्हें, हम भी पड़े हैं क्लेश में॥
हैं अन्न में ही प्राण रहते, सिद्ध यह सिद्धान्त है।
हा! हा! कृषक के रक्त से, डूबा जगत का प्रान्त है॥

(८१८)

जब अन्न आता पेट में, तब सूझती बाबूगरी।
तब लेकचर हो झाड़ते, कविता रचो जादू भरी॥
वह अन्न-दीन किसान का, दो-चार दिन मत खाइये।
फिर 'रिस्टवाच' निहारिये, नूतन कमीज सिलाइये॥

(८१९)

बाजार में, सब वस्तुओं का, ढेर भारी दीखता।
संसार, हरदम, नई चीजो का, बनाना सीखता॥
पर, सत्य कहिये, अन्न जैसी, कौन वस्तु अमोल है।
किसकी जरूरत है बहुत, किस पर टिका भूगोल है॥

(८२०)

सब से अधिक जीवातमा को, अन्न की दरकार है।
फिर—वस्त्र आवश्यक तनिक अविशेष सब व्यापार है॥
बाकी सजावट है निरी, वह जान ठग, विद्या सभी।
दल्लाल हैं हम लोग, मन मे सोचते हो यों कभी॥

(८२१)

वह अन्न-युत, वह वस्त्र दोनो वस्तु देते कृषक हैं।
मम प्राण-युत तन-लाज रक्षण-भार लेते कृषक हैं॥

हैं जड़ यही दो वस्तुएँ, संसार-पारावार में ।
सब कर्म लय होते अहो, इन युगल वर व्यापार मे ॥

(८२२)

जिस भांति माता, पुत्र निज को, पालती है मोद मे ।
निज रक्त द्वारा, बना पय, सुत को पिलाती गोद में ॥
सब कष्ट सहती आप, पर निज पुत्र की रक्षक बनी ।
अपने किसानो मे प्रकृति, यह दीखती कितनी घनी ॥

(८२३)

बिन यज्ञ, वर्षा भी, समय पर, आज कल होती नहीं ।
केवल नहर के नीर से, खेती भला होती कहीं ॥
जब इन्द्र अपने कर्म का, कुछ भाग भी पाते नही ।
तब दोष क्या ! जो जल समय पर ठीक बरसाते नही ॥

(८२४)

वर्षा न होती है समय पर, या हुई तो अति हुई ।
दोनों तरह से, दीन खेती की, भयानक क्षति हुई ॥
अथवा गिरे ओले कहीं, बीमारियां या आ गयी ।
थी पक रहीं जो बालियां, सो टिड्डियां ही खा गयी ॥

(८२५)

बे खेत बंजर हो रहे, अब खाद भी पड़ती नहीं ।
तबियत किसानों की जरा भी खेत में अड़ती नहीं ॥
दो वर्ष का पट्टा लिखा है, जिमीदार नरेश ने ।
अब कौन 'शिकमी' खाद डाले, छल रचे हैं देश ने ॥

(८२६)

अब उपज होती, एक बीघा-मध्य, मन दो एक ही।
पर पोत वह 'दरबार' लेता, रूपये दस टेक ही॥
लो तीन रुपये, उस नहर की, आबपाशी जड़ गये।
वे सेठ जी के, बीज वाले दाम, ऊपर पड़ गये॥

(८२७)

यों अन्न लूटा ठगो ने, भूसा पड़ा बाकी रहा।
ये है किसानो की अवस्था, दुर्दशा उनकी महा॥
छः मास का तप था किया, उस दीन-हीन किसान ने।
फल में तनिक भूसा मिला, कैसा छला ईमान ने॥

(८२८)

हम स्वार्थ-लोलुप-चोर, उनको अन्न तक देते नही।
पाखण्ड रच-रच, कौन सी है वस्तु, जो लेते नहीं॥
जो देर देने मे हुई, नालिश बनाकर, ठोक दी।
नीलाम घर करवा लिया, इस विधि कटारी भोक दी॥

(८२९)

गोवंश मिटता जा रहा, मिलते न उनको बैल हैं।
चाण्डाल, गौओं के उदर से, खींचते क्या तैल हैं॥
तो बैल की जोड़ी मिलै, जो पास रुपये साठ हो।
भूसा अगर सब वेच दे, तो हाथ रुपये आठ हो॥

(८३०)

है एक घर में भैंस, जिस का दूध जीवन—वित्त है।
लड़का लिये बाजार जाता, वेचने को नित्त है॥

चावल उसी के आ गये, यों पेट पापी भर लिया।
हा! हा! किसानों को हमीने राख बिलकुल कर दिया॥

(८३१)

हमको खिलाते पूड़ियां, पर आप 'मटरा' खा रहे।
हम 'शेरवानी' पहनते, पर, वे लंगोट लगा रहे॥
हम चार जोड़ी जूतियो के बिन न बाहर आ सके।
वे जेठ मासी धूप मे भी, पैर नंगे, जा सके॥

(८३२)

माता-पिता जैसे कृषक, निज धर्म-कर्म निबाहते।
मुंह खोल, कोई दया वाली, भीख भी कब चाहते॥
यद्यपि जला सकते हमें, वे एक ठण्डी आह से।
पर, वे दयामय सदा देखें, हम ठगों को, चाह से॥

(८३३)

जाओ! निहारो आज मिलकर, दीनबन्धु किसान को।
उनके भवन की बेकसी, लज्जित करै शमशान को॥
करता तपस्या है कृषक, सन्तान-नारी को लिये।
बरसात, गर्मी और सर्दी आदि सब ने, दुख दिये॥

(८३४)

सरकार ने भेजे नये, जो हिन्द वायसराय हैं।
वे कृषक के हैं मित्र मन से, और बन्धु सकाय हैं॥
सरकार ने उनको चुना, जब जान अपनी भूल ली।
भारत-भलाई के लिये, निज हाथ मे अब मूल ली॥

(८३५)

जो कृषक दल को जानता, वह जानता भगवान को।
जो कृषक का दुख मानता, वह जानता नुकसान को॥
जो उन गरीबो के लिये, निज प्रेम देता दान मे।
संजीवनी बूटी वही, देता विमुदित मान मे॥

(८३६)

जो लोग उनको मूढ़ समझे, और ठगते घूमते।
जो लोग उनका रक्त वाला, नशा पीकर झूमते॥
उनके लिये हम शाप लिख, कवि-धर्म से क्यो हीन हो।
भगवान उनको दें सुमति, दुर्भावनाएँ क्षीन हों॥

(८३७)

बारह बरस तक खेत 'शिकमी' रह सके उनके लिये।
कुछ भी न होगा वरन खेती-मध्य, हम सब के किये॥
इन 'तीन बरसो' के लिए, क्यों प्रेम खेती पर रहे।
क्यो खाद डाले कृषक, क्यो दुख द्वन्द खेती मे सहे॥

(८३८)

था प्रथम 'बारह वर्ष' का कानून भारतवर्ष मे।
अब 'तीन साला' हो गया है, पाप के आकर्ष मे॥
सरकार ने अब कृषक का सिर, उन रईसो को दिया।
हा! हा! जिन्होने उन गरीबो को सदा चौपट किया॥

(८३९)

जो, कृषक खेती छोड़कर, जाकर 'मिलो' का काम ले।
आकर शहर भीतर बसें, फिर 'खेत' का क्यो नाम ले॥

हड़ताल खेती पर करें, तो, मजा ही आ जायगा ।
दो वर्ष मे ही, मूल्य सब को, कृषक का दिखलायगा ॥

(८४०)

बाजार सूने अन्न से—खा जाइयेगा—'नोट' को ।
हे 'वोटरो' दौड़ो—बिछाओ और ओढ़ो 'वोट' को ॥
हे पुलिस वाले साहबो, मूंछें सदैव मरोड़िये ।
हे कारखानो ! निज कलो से, दाल-भात निचोड़िये ॥

(८४१)

मर जायगा; नेता विचारा, लेक्चर के साथ ही ।
रह जायगा, उपदेशको का, बस-उठा सा, हाथ ही ॥
तब फिर वकीलो ! आपकी, किस घर वकालत जायगी ।
जब 'मिसिल' सन्मुख आपके, हड़ताल वाली आयगी ॥

(८४२)

रेले न 'बोरे' ढो सके, हां-खोद मिट्टी लाद ले ।
'रेली ब्रदर' जापान को, तब तार से—सम्वाद दें ॥
सम्पादकों की मेज पर, अखबार का 'हलुआ' धरो ।
हां—खेत वालो ! खेत में जाओ, लड़ो, गिरकर मरो ॥

(८४३)

सरकार ! भारत के कृषक से, अन्न इतना फल सकै ।
इस देश ही के अन्न द्वारा, विश्व सारा पल सकै ॥
सरकार भी तो ' बाबुओं ' के साथ मे, रहती सदा ।
पर चाहिये उसको कृषक से, प्रीति रखना सर्वदा

(८५३)

बस एक लोटा छाछ है, बथुआ बना है शाक मे।
भोजन यही, मिहनत वही, है काल बैठा, ताक में॥
वे बैल रोते बाग मे, घर में कृषक भी रो रहा।
अब बीज रोता खेत मे, है खेत व्याकुल हो रहा॥

(८५४)

उस कृषक-नारी की दशा का, चित्र अब है—खींचना।
वह चित्र देखोगे अगर, तो, नेत्र होगा—मींचना॥
प्रातः उठी दो बजे से, चक्की चलाती ही रही।
निज गीत द्वारा राम से, उसने मुसीबत सब, कही॥

(८५५)

उठकर बुहारा है भवन, गोबर उठाया, प्रेम से।
दो-चार पैसे मिल रहे, उपलो के द्वारा, नेम से॥
चौका लगा, पानी भरा, मट्ठा बिलोया, चाव से।
फिर शाक ला, रोटी बनी, पति-मार्ग देखै, भाव से॥

(८५६)

अब जायगी पति-संग, खुरपी हाथ लेकर खेत मे।
पौदे निकाये शाम तक, लौटी तुरन्त निकेत मे॥
फिर घर बुहारा, दाल-दलिया, रांध कर के रख लिया।
लो जला, मिट्टी-तेल वाला, धुएँ वाला, वह 'दिया'॥

(८५७)

इस भाँति सर्दी और गर्मी, सह रहे बरसात हैं।
काला बदन उनका हुआ, बिलकुल हुये कृश गात हैं॥

तो भी हमारे सामने, कर जोड़ वे होते खड़े।
'रामा अनुग्रह' हम बड़े, या तुम बड़े या वे बड़े?

(८५८)

आया सिपाही पुलिस का. दो-चार धक्के दे गया।
ले ही गया दो लकड़ियां, या चार आने ले गया॥
निकले उधर से, तो बहुत, नाराज पटवारी, हुये।
भेजा नहीं भूसा अभी तक, क्यों गधे के-'चूतिये'॥

(८५९)

है द्वार कारिन्दा खड़ा, वह हाथ मे 'खसड़ा' लिये।
मन मे, खुदा जानै, कहां का, कठिन सा 'पचड़ा' लिये॥
लागान बाकी ही रहा, दो बार रुपया ले गया।
उस रबड़ जैसे ब्याज द्वारा, बढ़ रहा पैसा-नया॥

(८६०)

वह नहर के पतरौल साहब, आ रहे हैं सामने।
पाया न नजराना अभी, भेजा उसी के काम ने॥
जब आयँगे साहब इधर, खेलें शिकार विहार से।
तब कृषक जावै साथ मे, पकड़ा हुआ बेगार से॥

(८६१)

यह हाल है उस मित्र का, जो प्राणप्रिय संसार का।
जो अन्नदाता विश्व का, ये हाल है उस यार का॥
जो जो किया सो भूल जाओ, और सब मिल प्रेम से।
होकर सहायक हृदय से, करुणा दिखाओ नेम से॥

(८६२)

मर जायगा जो कृषक, तो हम लोग भी मर जायंगे।
तर जायगा जो कृषक, तो सब लोग भी तर जायंगे॥
वह खूब रोदन कर चुके, वह खूब भूखा रह चुके।
अब तो हँसा दो कृषक को, सब क्लेश अब तो सह चुके॥
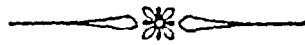
द्वितीय परिच्छेद

गो-रक्षा

(८६३)

हम गाय हैं! इसलिये हमको, सड़क ऊपर मारलो।
अत्यंत सीधे जानवर की, खाल खूब उतार लो॥
जो सिंहनी होती कहीं, हम बाघनी होती कहीं।
इस भांति बिलकुल दुर्दशा, करते हमारी तुम नहीं॥

(८६४)

इस जगत मे, अत्यंत सीधे जीव का, अपमान है।
चालाक हिंसक जीव का, इस विश्व मे सम्मान है॥
हो बकरियों को मारते, पर सांप से डरते सदा।
हा! हा! गरीबी, भाग्य तेरे मे, सदा ही दुख बदा॥

(८६५)

देखो मुझी को, कौन सी पाखण्ड रखती पास हूं।
पीयूष जैसा दूध देती, और लेती घास हूं॥

अब घास भी मिलती नहीं, उस जंगलात सिवान से।
हूं माँगती, एक बारगी; निज मृत्यु ही, भगवान से ॥

(८६६)

है प्रेम कितना आप से, हृद्धाम मेरा जानता।
श्री कृष्ण जी के सखा हो, यों चित्त मेरा मानता ॥
सत्सग छूटे आपका, ये सहन हो सकता नहीं।
बिन घास, जीवित हूं अहो, खाया मिला जो कुछ कहीं ॥

(८६७)

हा हा ! हमारे गले ऊपर, अब कटारी चल रही।
हा प्रेम ! तेरी जीवनी, दिन-रात क्रमशः ढल रही ॥
जा प्रेम ! जग से दूर हो, अब स्वार्थ ही का राज हो।
दो हाथ चमड़े के लिये, मेरे मरण का काज हो ॥

(८६८)

मुझको मरण का दुख नहीं, जो आपकी सेवा बनै।
लेकिन, हमारे मांस-चमड़े से नहीं, मेवा बनै ॥
जीवित रहूँगी तो तुम्हे, घी-दूध दूंगी चाव से।
शुभचिन्तिका रहती तुम्हारी, जननि जैसे भाव से ॥

(८६९)

घी-दूध बिन हे लाल ! तेरा हाल भी बेहाल है।
उसके बिना बच्चो ! तुम्हारे शीश ऊपर काल है ॥
दिल हो गया निर्बल परम, मस्तक तुम्हारा चीन है।
है आयु की भी परिधि छोटी, बुद्धि भी तो हीन है ॥

(८७०)

यूरोप के हल मोटरो से, चल रहे है, है सही।
है ऊँट द्वारा जुत रही, मक्का-मदीने की मही॥
गो-वंश परही देश भारतवर्ष की खेती खड़ी।
गो-वंश बिन हे हिन्द तेरी दुर्दशा होगी बड़ी॥

(८७१)

है दूध मम निर्मल परम, बल-वीर्य-बुद्धि प्रदत्त है।
पीयूष है वह धरणि का, सौंदर्य सुषमा-दत्त है॥
घृत परम गुणकारी मिले, दधि परम मंगल रूप है।
गोवर से घर का लीपना, होता विशुद्ध अनूप है॥

(८७२)

मम मूत्र औषधि रूप है, मम दर्श माता रूप है।
मेरा स्वभाव निरीह है, मम चलन सत्य अनूप है॥
जो पूंछ मेरी पकड़ते, सो पार वैतरणी करे।
फिर किस लिये, बे-मौत, हम सब, आपके सम्मुख मरें॥

(८७३)

हम रहे हिन्दुस्तान मे, हम रहे तुर्किस्तान में।
सत्ता हमारी है बहुत, यूरोप इंग्लिस्तान में॥
मुझको घृणा किससे कहो, जब सर्व देशो मे रहूं।
सुत सर्व मेरे विश्व मे, अनुचित नही जो यो कहूं॥

(८७४)

मैं हिन्दुओ को भी पिलाती, दूध मीठा सर्वदा।
अंग्रेज को कड़वा पिला, देती नहीं हूं आपदा॥

मैं मुसल्मानों को कभी, देती न दूध भयावना।
हैं पुत्र तीनो ही हमारे, प्रेम है सब पर घना॥

(८७५)

ता भी हमारी दुर्दशा का, अंत दिखलाता नहीं।
उपकार से अपकार हो, यह समझ में आता नही॥
रक्षा हमारी हो रही है, नाम मात्र विधान को।
सब ले रहे हैं-हा हमारे, प्रेम प्यासे प्रान को॥

(८७६)

दस पांच गौशाला खुले, उनसे न अपना त्राण हो।
दो-एक दिन पूजा मिलै, उससे न सुखमय प्राण हो॥
तुम तीन बांधव हो खड़े, मैं शरण हो, चरणों पड़ी।
मुझको बचाओ, मुझ बिना, है दुर्दशा सब की बड़ी॥

(८७७)

जो लोग, मेरे मांस द्वारा, पेट अपना भर रहे।
भगवान जाने! कौन सा सद्धर्म्म वे सब कर रहे॥
ये पूछना उनसे कभी, क्या वे अमर संसार मे।
बदला न पावेंगे कभी, निज कर्म के व्यापार में॥

(८७८)

पीयूष जैसा दूध पीकर, पुष्ट होते हो नहीं।
घी और दधि को प्राप्त करके, तुष्ट होते हो नहीं॥
जो रक्त पीना है तुम्हें-तो खूब पीलो-मानवो।
जो रक्त से जीवित रहो, तो खूब जीलो-मानवो॥

(८७९)

नर-योनि-रचना श्रेष्ठ विधि की, ये सभी हैं जानते।
सुर-नाग-किन्नर आदि से भी श्रेष्ठ नर को मानते॥
लो, पाप देखा उन नरों का, हम अपाहिज के लिये।
हमको सताते रात-दिन, हमने किसे दुख थे दिये॥

(८८०)

कुछ वश हमारा है नहीं, सब भांति से आधीन हूं।
रक्षक बनो-भक्षक बनो, जो कुछ बनो-मैं दीन हूं॥
हरि ने बिसारा है हमें, सब ओर से निसहाय हूं।
इतना कहूं कर जोड़ कर, भइया! तुम्हारी गाय हूँ॥

(८८१)

बच्चे हमारे भूख से, हैं छटपटाते सामने।
पर, दूध सारा तुम सभी, पीते पिलाते सामने॥
वे पुत्र मेरे हो बड़े, सेवा तुम्हारी ही करें।
पर, मांस चमड़े के लिये, वे संग मेरे भी मरें॥

(८८२)

जारी रहा जो नाश मेरे वंश का यो सर्वदा।
तो साफ दिखलाता यही, दुख है बहुत तुमको बदा॥
जो जरा हरियाली बची, सो भी जलेगी आग से।
समृद्धि होगी, सिर्फ मेरे वंश के, अनुराग से॥

(८८३)

बहुधा हमारे ही लिये, संग्राम होता है यहाँ।
है नाचती काली बनी, हत्या हमारी ही वहाँ॥

कुर्बान करना धर्म है, जो लोग ऐसा मानते ।
पा, अन्न की अति हानि है ये भेद भी पहिचानते ॥

(८८४)

हिन्दू हमे है पालते निज धर्म-कर्म निहार के ।
रक्षा करो तुम देश हित, अनुमान और विचार के ॥
सब काम लेगे कलो से, यह तो सुनाई आपने ।
क्या दूध देने योग्य कोई, कल बनाई आपने ॥

(८८५)

है दुःख के घन घिर रहे, घन घोर मेरे वंश मे ।
बैठा शनैश्चर है, हमारी, जिन्दगी के अंश मे ॥
ज्योही, बुढ़ापे ने चरण, रक्खा हमारी देह में ।
फिर जगह मिलती है नहीं, इन हिन्दुओं के गेह में ॥

(८८६)

देते कसाई हाथ मुझ को बेच, अपने हाथ से ।
निष्ठुर हटा देते मुझे, किरतघ्न बन कर साथ से ॥
कुछ लोग मेरी देह भीतर, अंग पर का जोड़ के ।
पूजा कराते घूमते, निश्चर भलाई छोड़ के ॥

(८८७)

कुछ लोग गंगा मे खड़ा कर, पूंछ मम पुजवा रहे ।
दो-चार आने प्राप्त कर, भवसिन्धु तय करवा रहे ॥
मैं भूख से व्याकुल हुई रहती खड़ी दिन-रात ही ।
इन हिन्दुओ के स्वार्थ की भी, है निराली घात ही ॥

(८८८)

है पुत्र मेरे बैल उनका हाल किस मुख से कहूं।
मन जल रहा है आग से, चुपके भला कैसे रहूं॥
दुख-दाह कहने मात्र से, हलका हृदय हो जायगा।
या पाठकों के हृदय भीतर, लक्ष कोई आयगा॥

(८८९)

वे बैल कन्धों पर उठाये, हल चलाते नेम से।
सब खेत जोतें और बोवें, कृषक वाले प्रेम से॥
पर, दोपहर तक काम लेकर, वृक्ष में बांधा उन्हें।
पानी पिला गन्दा तथा भूसा सड़ा डाला उन्हें॥

(८९०)

जल भी उन्हें जुरता नही, फिर और कहना व्यर्थ है।
है पोखरे में सड़ा पानी, जो हमारे अर्थ है॥
गर्मी पड़े कितनी कठिन, पानी कहाँ—कीचड़ मिला।
भूसा मिला दुर्गन्धमय, है वृक्ष ही उनका किला॥

(८९१)

कुछ देर में उनको उठाया और गाड़ी में कसा।
है बोझ भी वे तो नही कैसी मुसीबत पर-वशा।
जो बोझ ढोने मे तनिक, आलस्य देखा जायगा।
तो लोह वाली कील से, सब बदन रक्त बहायगा॥

(८९२)

ज्योंही तनिक दुर्बल हुये, त्योंही कसाई को दिया।
ये फल दिया है प्रेम का, जो कुछ बना सो ले लिया॥

हा ! नाथ डाली नाक उनकी, मर्द से औरत किया ।
निज काम लेकर रात-दिन, फिर भी कसाई को दिया ॥

(८६३)

गोवध न होता माँस हित, है चाम का भी दाम तो ।
कारण प्रबल है चाम का, है मांस का ही नाम तो ॥
यदि बीस रुपया मूल्य मेरा, जगत ने जाना यहां ।
तो मांस द्वारा पांच रुपया, प्राप्त हो सकता वहां ॥

(८६४)

हां—चाम वाले दाम से, होता मुनाफा है बड़ा ।
गो-चर्म का व्यापार दुनियां मे किया किनने खड़ा ॥
जो बीस के चालीस होते, आज के बाजार में ।
तो क्यों कुशल माने न जावे, आप निज व्यापार में ॥

(८६५)

यद्यपि मिलेगा एक गौ से, वर्ष दस के बाद में ।
रुपये हजार हिसाब से, घी, दूध, बछड़े, खाद मे ॥
पर बात कल की कौन जाने, सूत्र उसका तोड़िये
बस, आज जो चालीस हो, तो फिर हजारो छोड़िये ॥

(८६६)

व्यवहार चमड़े का करें, जो लोग फैशन के लिये ।
गो-वंश के वध कर्म में हैं वोट उन सबने दिये ॥
जो हिन्दवासी त्याग दें, व्यवहार चमड़े का अभी ।
गोवध न होगा तो कभी, गोवध न होसकता अभी ॥

(८९७)

दो चार जोड़ी जूतियाँ, प्रत्येक जन रखते यहां ।
इस कदर चमड़ा मिल सकै, संसार मे कैसे कहां ॥
प्रति जीव को, प्रति वर्ष मे, वह क्रूम लेदर चाहिये ।
ये बात सिद्ध हिसाब से, अटकल न इसको पाइये ॥

(८९८)

कल-कारखानों मे बहुत, व्यवहार चमड़ा हो रहा ।
जल भी कुएं से मोट द्वारा, खेत भीतर ढो रहा ॥
जूते बनें दस भांति के, औ जीन घोड़ो के ढले ।
पेटी बने, पतलून ऊपर बांध कर 'मिस्टर' चले ॥

(८९९)

हैं बक्स बनते चाम के, ' मनिबेग ' बनते चाम के ।
हैं ' रिस्ट वाचों ' के लिये, चमड़े बड़े ही काम के ॥
चमड़ा तुम्हारी टोपियों मे, भी न लगता है, कहो ।
है पैर मे भी, कमर मे भी, सीस पर भी है, अहो ॥

(९००)

है चलनियो के मध्य चमड़ा, ढोलको मे चाम है ।
नक्कारखाना चाम का, कुर्सी मे उसका काम है ॥
है चाम बिस्तरबन्द मे, है चाम हण्टर मे लगा ।
बन्दूक नीचे चाम है, चिट्ठीरसो का वह-सगा ॥

(९०१)

बतलाइये, ये चाम इतना, प्राप्त कैसे हो सके ।
वह कौन सी है वस्तु, इतनी आवश्यकता खो सके ॥

पर, सोचना है अब यही, था कम द्वापर मे नहीं ।
फिर काम कैसे था चला, गो-वध हुआ था तब कहीं ॥

(६०२)

उपयुक्त चीजो के लिये, है काम कपड़ा दे सकै ।
पर, भार उतने पुण्य का, कलिकाल कैसे ले सकै ।
उपयोग जितना हो रहा है, चाम का सो व्यर्थ है ।
अन्यान्य विधि से हो सकै, सब कार्य्य वाला अर्थ है ॥

(६०३)

हे हिन्दुओ ! लो कसम खाओ, कम करो चमड़ा सभी ।
चमड़े से हत्या हो रही, यह आपने सोचा कभी ॥
हाँ-छोड़ दो चमड़ा, यही है काल, तेरी गाय का ।
चमड़ा नहीं है-भूत है, मेरे हृदय की हाय का ॥

(६०४)

अब कम करो चमड़ा सकल, श्री राम जी की आन मे ।
हाँ-कम करो चमड़ा अभी, श्री कृष्ण जी की शान में ॥
हाँ-कम करो चमडा अभी, गो-वंश के उद्धार को ।
हाँ-कम करो चमड़ा सभी, निज देश-कार्य्य-सुधार को ॥

तृतीय परिच्छेद

आशा

(१०५)

श्री कृष्ण अन्तर्ध्यान से, अब तक, स्वदेश अनाथ है।
हिन्दुत्व वाली शान सोई और, जड़ता माथ है॥
गौरव नहीं अविशेष अब, धन-धान्य केवल हाथ है।
चिन्ता सदा व्याकुल करै, भारत हुआ नत-माथ है॥

(१०६)

इतने दिवस बीते, निराशा में हमारे, अब यहां।
पग छोड़ कर, आशे! तुम्हारे, किन्तु जावे हम कहां ॥
श्री पूर्ण आशा देवि प्यारी, हम जहां तुम भी वहां।
वह दिल नहीं कोई, न पाई आपकी मूरत, जहां॥

(१०७)

अब राज हम चाहें नहीं, हम राज का सुख ले चुके।
निज विश्व व्यापक राज का, इतिहास जग को दे चुके॥
उस राज वाली लालसा की नाव, तट पर, खे चुके।
हम कब रजोगुण चाहते, फटकार उसको दे चुके॥

(१०८)

हम चाहते "हिन्दुत्व" का गौरव हमारे साथ हो।
उस वेद नामक ब्रह्म पद में, झुका अपना माथ हो॥
सन्मुख हवन का कुण्ड हो, मेवा हमारे हाथ हो।
अपना 'सतोगुण' नाम हो, सन्तुष्ट दीनानाथ हो॥

(६०६)

राजा रहे कोई, मगर, हम बने गुरु उसके रहें।
भइया बड़ा हमको कहै वह, बंधु मँझला हम कहे॥
वह बात श्रद्धा से करे, तब, हाथ हम उसका गहें।
इस भाँति क्यो हमलोग, धार्मिक भीरुता का दुख सहे॥

(६१०)

हम दास 'कमला' के नहीं, 'कमलेश' मे अनुराग है।
हम भक्त हैं शिव के, हमारा शक्ति का अब, त्याग है॥
ध्रुव ज्ञान को हम चाहते, जिसका जगत यह बाग है।
अधिकार-शासन-शक्ति अब तो दीखती ज्यो-आग है॥

(६११)

उद्योग करना है हमें- अधिकार प्राप्त किसान हो।
उद्योग करना है हमे—गोवंश का सम्मान हो॥
उद्योग करना है हमें—ब्रह्मचर्यमय उत्थान हो।
उद्योग करना है हमें—सब का प्रभो! कल्याण हो॥

(६१२)

हमको कहें जो 'आलसी'—अब 'कर्मरत' मानें वही।
हमको कहे 'निज धर्म-त्यागी'– 'धर्ममय' जानें वही॥
हमको कहे जो 'मूर्ख है'। सो 'वीर ज्ञानी, जान लें।
सब लोग मेरे 'सतोगुण' का पुन' लोहा मान ले॥

(६१३)

सत और रज तम—तीन ही— संसार के आधार हैं।
सतगुण हमारा वंश है, हमलोग 'सत' के सार हैं॥

'रज' रूप यूरुप वंश है—'तम' रूप तुर्किस्तान है।
निज रूप मे वे ठीक हैं, भूला तो हिन्दुस्तान है॥

(६१४)

जब तक 'सतोगुण' ठीक से, आसीन होता है नही।
तब तक रजोगुण युत तमोगुण चैन पा सकता कहीं॥
सम्बन्ध तीनो मे लगा, मम भूल से, सब दुख सहे।
'भूला हुआ' जो वे कहे, सोचो नहीं मिथ्या कहें॥

(६१५)

जो आर्य तज कर सतोगुण लेगा रजोगुण हाथ में।
परमात्मा के हुक्म से, ठोकर लगेगी, माथ में॥
गुण तीन, भारत में जुड़े, किस लिये, यह पहिचानिये।
वह भूत तो था ठीक ही, अब 'वर्तमान' बखानिये॥

——::०::——

उपसंहार

(६१६)

पाठक! बना यह ग्रन्थ है, अति शीघ्रता के साथ में।
अन्यान्य ग्रन्थों की मदद, आई न मेरे हाथ मे॥
कहते 'कथा हरि' की रहे अवकाश भी पाया नही।
इस भाँति, पुस्तक, पूर्णता का लाभ पा सकती कहीं॥

(६१७)

छूटे विषय कुछ, और कुछ पूरे विषय उतरे नही।
सारे विषय निज जानकारी मध्य आ सकते कहीं?

जो भूल-भ्रम-विक्षेप हो, सो क्षमा पाठक ! कीजिये ।
एक पत्र द्वारा, राय निज, कृपया मुझे दे दीजिये ॥

(६१८)

मैं ग्रन्थ-लेखक हो गया, अभिमान यह मन में नहीं ।
सेवक न सेवा के लिये, अभिमान कर सकता कहीं ॥
कर जोड़ कर विनती यही, उत्साह केवल दीजिये ।
साहस बढ़ाना हो अगर, दिल से अनुग्रह कीजिये ॥

(६१६)

उपदेश देने योग्य मुझ मे, योग्यता आई नहीं ।
उस अगम्म पिंगल-शास्त्र की, मर्मज्ञता पाई नहीं ॥
निज नाम हित मैंने परिश्रम किया, यह मत जानिये ।
इस तुच्छ सेवक हाथ की, यह स्वल्प सेवा मानिये ॥

(६२०)

इस कर्मफल की वासना, श्रीकृष्ण जी के साथ है ।
तन-मन-सदन-धन और जीवन,कृष्ण जी के हाथ है ॥
भय कहां, राधा-नाथ जब, श्रीकृष्ण श्री जगनाथ है ।
श्रीकृष्ण के पद-कमल ऊपर, दीन 'उग्रह' माथ है ॥

(६२१)

संसार के दरबार का कुछ काम है करना मुझे ।
भारी भरोसा वायुसुत हनुमान का रखना मुझे ॥
हृदयेश हैं वे, और वे सरकार मेरे चित्त के ।
साहब ! सहायक ! सद्‌गुरू ! सच्चे सखा हैं नित्त के ॥

(६२२)

भगवान बजरंगी ! बली ! निज वज्र लीजे हाथ मे ।
फिर शान्ति-सीता खोज कर, सुख सर्व दीजे हाथ मे ॥
जातीय-जीवन जग पड़े, हिन्दुत्व की लौ, लाल हो ।
जय हो सुधारो की पुनः, अन्याय का अब काल हो ॥

(६२३)

" रामाअनुग्रह " नाम वासी हूं " भलाई " ग्राम का ।
" बलिया " हमारा प्रान्त है, भागीरथी के धाम का ॥
" हिन्दू-सभा " का पुत्र हूं , श्री यज्ञ-पद का दास हूं ।
निज देश का सेवक सदा, प्रेमीजनों के पास हूं ॥

(६२४)

है धन्यवान महान मित्रो की कृपा-उद्देश का ।
उपदेश जिनसे प्राप्त कर, गाया कथानक देश का ॥
है धन्यवाद सदैव श्रीमद् ' नयन जी ' कविराज का ।
यह ग्रन्थ सम्पादन किया, तज चिन्तवन निज काज का ॥

(६२५)

पाठक ! विदा अब दीजिये, फिर मिलूंगा कुछ रोज में ।
दिन-रात जाता है चला मम, प्रेम-पथ की खोज में ॥
जो आप यो अनुकूल है, तो न्याय होगा न्याय का ।
है न्याय दीन किसान का, हो न्याय दुखिया गाय का ॥
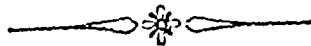
सातवां अध्याय

प्रथम परिच्छेद-परिशिष्ट

सप्तम अध्याय

प्रथम परिच्छेद

परिशिष्ट
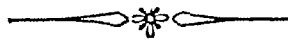
१—दीनों का शाप

(६२६)

ये अन्नदाता विश्व के जो, आज भूखो मर रहे।
जीवन-मरण की नाटिका का, दृश्य पूरा कर रहे॥
जो चैन से सोने न पाये, बौहरे की मार से।
अब दे रहे हैं शाप वे ही, आज अश्रू-धार से॥

(६२७)

उस शाप का फल देख लीजै, आज झगड़े साजियां।
हर एक कुनबे में हुआ करती मुकदमे बाजियां॥
उस मूर्खता के काज मे, निज भ्रात भूखे मर रहे।
भर पेट फिरते रात-दिन जो, पेट उनका भर रहे॥

(६२८)

होती कचहरी औ अदालत, जब जरासी बात पर।
हैं मूड़ते वकला उन्हीं को, कर मुकदमे घात पर॥

बरबाद होने लग गये, चिंता रही न विसात की।
पर टेक तो रखनी पड़ी, हर एक छोटी बात की॥

(६२६)

जब दो बिलारी जा करातीं, फैसला कपिराज से।
बरबाद दोनों हो वहाँ, निज मूलधन से, ब्याज से॥
सब शक्ति खो बैठी जहां, रोती-बिलखती रह गईं।
विद्या-समति के संग ही, श्री लक्ष्मी जी बह गईं॥

(६३०)

२—झगड़े

नारी, धरा, धन हैं, यही बस, तीन कारण फूट के।
अज्ञान, दुर्मति, हेकड़ी, पट खोलते हैं लूट के॥
है क्रोध-दावानल जलाता, रात-दिन हर एक को।
मिट जायँगे लड़ते हुए, छोड़ें नहिं पर टेक को॥

(६३१)

दो भाइयों ने घर बनाये, शौक से एक ग्राम में।
पर एक पतनाले के ऊपर, आगये संग्राम मे॥
वे लाख के घर खाक मे, लड़कर अदालत से मिले।
पर ऐंठ तो फिर भी न निकली, रह गये दिल मे गिले॥

(६३२)

३—वकील

तब पैर छूकर के वकीलों की शरण ली आपने।
कुछ सच कहा, कुछ झूठ बोले, धर दबाया पाप ने॥

यह गृह-कलह है विज्ञ पाठक ! या तपाया ताप ने ।
अथवा किया है काम कुछ, यह दीन जन के शाप ने ॥

(६३३)

बस झूंठ कह-कह कर किया, पैसा जमा सरकार ने ।
ये तब लगे करने वकालत, या अदालत झारने ॥
वे रोज उठ करके मनाते, जो शिकार फंसे कहीं ।
जो खोल कर करना हजामत, एक बार बचे नहीं ॥

(६३४)

सुन लीजिये सरकार ! मेरी, रंज से कहने लगे ।
कुछ डाट और फटकार भी, सरकार की सहने लगे ॥
है एक पतनाला मेरो भाई बनाया द्वार है ।
हम सहन कर सकते नहीं, अपमान यह सरकार है ॥

(६३५)

जिजमान तुम हमरे भला, चहिये मिहनताना नहीं ।
लड़कर मुकदमा जीतिहैं, कुछ हार तो खाना नहीं ॥
मत भाई-भाई से दबो, लड़ना मुकदमा चाहिये ।
अन्याय तो अपमान है, कुछ न्याय करना चाहिये ॥

(६३६)

भड़का दिया उनको जरा, बस तैश मे आने लगे ।
थैली मुहर्रिर से वहीं, सरकार गिनवाने लगे ॥
'इस्टाम्प उजरत' और कोरट फीस इतनी चाहिये ।
खातिर सवारी और 'खाना खर्च' भरती चाहिये ॥

(६३७)

औ चार दमड़ी का पनारा, खर्च छै सौ कर दिये।
खाली किये भंडार निज, सरकार के घर भर दिये॥
क्या न्याय कर सकते नहीं, पंचायतों में वो जरा।
पर वो अदालत में मिटे, बेची सभी धरणी-धरा॥

(६३८)

पाठक जरा तो सोचिये, कैसे मवक्किल निर्दई।
करते सभी को तंग हैं, प्रभु ने सुबुद्धी इनकी हरि लई॥
क्या चैन से सुख भोगते, हलवाइयों को देखिये।
पर हाय इनहीं के लिये, गरमी मरें नित लेखिये॥

(६३९)

बाबू बने बीए हुये, एल-एल बी भी पास की।
वे धूप में मारे फिरें, आई घड़ी क्या नास की॥
अब ठीक दुपहरी पड़ैगी, जज्ज भी भागे फिरें।
तब धूल मोटर में उड़े, लाचार हैं वे क्या करें॥

(६४०)

फिर पेशियाँ पर पेशियाँ, पड़तीं गवाही के लिये।
महिमा मवक्किल की यही, होता न कुछ उनके किये॥
वो शाह की सुन्दर बनी सूरत, कराया छेद ही।
इस्टाम्प का मुँह तोड़ डाले, कुछ न पाया भेद ही॥

(६४१)

कागज दवात घिसा-घिसी में, और झगड़ा जीभका।
लेकिन कचहरी वाल, ऐसे ही चलाते जीविका॥
जब छै महीने चल चुका, ये मुकदमा पतनार का।
तब फैसला सुन लीजिये, होता है क्या सरकार का॥

(६४२)

सौ-सौ टके होता जरीमाना, उभय ही पत्त पै।
बस, सिर फुटौवल मुफ़ में, होने लगी बे लत्त पै॥
लड़-भिड़ बिना ही काम के, हैं हानि अपनी कर रहे।
धन औ समय के नाश से, हो मूर्ख, भूखों मर रहे॥

४—पंचायत

(६४३)

ऐ देश वालो! क्या तुम्हारी, बुद्धि है मारी हुई।
हो नष्ट 'जीवन' द्वेष फैले, द्रव्य की ख्वारी हुई॥
पंचायतों का संगठन, निज ग्राम में करदो भला।
हो प्रेम भी, पैसा बचै, होवै अनूपम फैसला॥

(६४४)

क्यों व्यर्थ में बरबाद जीवन, आप अपना कर रहे।
क्यों निन्दितों के चरन छूकर, शीश अपने धर रहे॥
हो नष्ट करते समय क्यों, तुम व्यर्थ में सरकार का।
पर डर नहीं है क्या तुम्हें, अपने प्रभू की मार का॥

(६४५)

हर ग्राम में पंचायतें, करके घटाओ द्वेष को।
औ पाठ देकर प्रेम का, सब के मिटाओ क्लेश को॥
करलो नियत विश्वास युत, तुम पाँच पंच चुनाव से।
हो न्याय कर्ता, प्रेम से, सबसे मिलें सद् भाव से।

(६४६)

हो पक्षपात विहीन 'सद्वक्ता' सदाचारी रहे।
हर ग्राम के, हर जाति के, ये पंच पद सार्थक गहे॥
होगा न कष्ट अनेक जनको, आपही के कारने।
जाना नही तुमको पड़ैगा 'कचहरी झक मारने'॥

(६४७)

झगड़े अगर निपटायेंगे, 'सब लोग' अपने ग्राम के।
सरकार को देंगे नहीं, यदि कष्ट अपने काम के॥
तो आप भी अपने प्रबंधक विश्व में कहलायँगे।
अपने पगों पर खड़ा होना, सीख जल्दी जायँगे॥

॥ इति शुभम् ॥

राम-मण्डल, काशी

द्वारा

कथा, धर्मोपदेश और भजनोपदेश

यह तो प्रेमी सज्जनों को विदित ही है कि आज प्राय: २५ वर्षों से भारतप्रसिद्ध कथावाचक श्री पं० रामानुग्रह शर्मा व्यास जी, धर्मोपदेशक अपनी संस्था के साथ देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भ्रमण कर कथा और धर्मोपदेश द्वारा जनता की सेवा करते हैं।

उक्त व्यासजी आवश्यकता पड़ने पर—जहाँ की जनता बुलाती है, वहाँ भी जाते हैं। उनकी संस्था मे प्राय: १०-१५ कार्यकर्त्ता साथ जाते हैं। व्यय भी अधिक पड़ता है और उनका प्रोग्राम महीनों पहले से बना होता है। इसलिये बुलाने वाले धार्मिक सज्जनों से नम्र निवेदन है कि वे प्राय: एक मास पूर्व मंत्री, राम-मण्डल, काशी से पत्र-व्यवहार कर—समय, व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में बात-चीत निश्चित करलें। निम्नलिखित पता स्थायी है, वहां पत्र लिखने से जहां कहीं संस्था होगी, वहाँ पहुँचा दिया जायगा—

प्रबन्धक—

राम-कार्यालय,

पो० लंका, बनारस सिटी